

श्री

श्री आचार्यकुन्दकुन्दाय नमः

यति-प्रतिक्रमण

[हिन्दी अनुवाद सहित]



हिन्दी-अनुवादक

श्री पं० पन्नालाल जी सोनी सिद्धान्त[illegible]

ब्यावर



श्री ब्र० नत्थोदेवी जैन

डिप्टीगंज, देहली के प्रदत्त [illegible]

प्रकाशित



प्रकाशिका—

०. शान्तिसागर जैन सिद्धान्त [illegible]

शान्तिवीर नगर, श्रीमहावीर[illegible]

प्रथम संस्करण) वीर [illegible] ([illegible]

१०००) विक्रम सं० [illegible] ([illegible]

प्राप्ति-स्थान
डा० कैलाशचन्द्र जैन
राजा टायज,-कम्पनी
डिप्टीगंज दिल्ली-६



मुद्रक- अजितकुमार शास्त्री
शान्तिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था
शान्तिवीर नगर, श्री महावीर जी

आद्य वक्तव्य

आत्माको शुद्ध बनानेके लिये जहां निर्ग्रन्थ मुनि-चर्या परम आव श्यक है वहां उस मुनिचर्या को निर्दोष रखने केलिये प्रतिदिन 'प्रति क्रमण' करना भी बहुत आवश्यक है। इसी कारण मुनियोंके प्रतिदिन के छह आवश्यक कर्मों में प्रतिक्रमण भी एक आवश्यक कर्म है।

उस प्रतिक्रमण के लिये सिद्ध भक्ति, चारित्र भक्ति आदि दश भक्तियोंका यथावसर पाठ किया जाता है। वह भक्ति-पाठ प्राकृत संस्कृत भाषामें है, अतः जो मुनिगण संस्कृत प्राकृत भाषाके अभ्यासी नहीं हैं उनको इस भक्ति पाठ का अभिप्राय समझने में कठिनाई होती है। उस कठिनाई को दूर करने के लिये यह हिन्दी अनुवाद सहित भक्तिपाठ प्रकाशित किया जा रहा है।

प्राकृत संस्कृत भाषाके गणनीय विद्वान् स्व० श्री प० पन्नालालजी सोनी ने इन प्राकृत संस्कृत भक्तियोंका हिंदी अनुवाद किया है। आशा है पूज्य मुनिराज तथा अन्य पाठक यतिप्रतिक्रमण का भाव बोध प्राप्त करने के लिये इस ग्रंथसे लाभ उठावेंगे।

—ब्र० सूरजमल सहितासूरि



धन्यवाद

श्री म० नथोदेवी देहली एक सच्चारित्र निष्ठ महिला हैं। आप श्री स्व० ला० छुन्नामल जी की धर्मपत्नी हैं। श्री सेठ मुन्नालाल जी घाड़ी वाले आपके सुपुत्र हैं। आपने टिण्डोगंज दिल्लीमें आयोंरा एक अच्छा अस्पताल स्थापित किया हुआ है, जिससे हजारों रोगी लाभ उठाते हैं। इसके सचालन में आप हजारों रुपये मासिक खर्च किया करते हैं।

श्री नथोदेवी जी अच्छी गुरुभक्त महिला हैं, साथ गुरुजनों म तथा मुनियों को आहारदान करने में तत्पर रहती हैं। इस वर्ष कोटा में पूज्य श्री १०८ आचार्य शिवसागर जी महाराज का चातुर्मास हुआ उस समय श्री नथोदेवी जी धर्म लाभ लेनेके लिये कोटा पधारीं और बहुत दिनों तक आचार्य महाराज का उपदेश श्रवण करती रहीं।

आपने आचार्य श्री को आहार दान दिया उसके उपलक्षमें आपने हिन्दी टीका सहित प्रस्तुत ग्रन्थ यतिप्रतिक्रमण प्रकाशित कराके लिये ११००) एक हजार एकसौ रुपये प्रदान किये हैं। इसके लिये आपको धन्यवाद है।

—ब्र० लाडमल जैन





यति–प्रतिक्रमण

मूल और भाषा

स्व० पं० पन्नालाल जी सोनी द्वारा अनुवादित

दैवसिक—रात्रिक यतिप्रतिक्रमण विधि आरम्भ

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषाः,
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थं ॥ १ ॥*

अर्थ—जीव में प्रमाद से जनित अनेक दोष पाए जाते हैं, जो प्रतिक्रमण करने से प्रलय को प्राप्त होते हैं [illegible] भवों में संचित हुए कर्मरूप पापों की विशुद्धि के [illegible] के अवबोधनार्थ प्रतिक्रमण का निर्मल अर्थ [illegible]

---

*—यह टीकाकार कृत मंगलाचरण है, यह म[illegible] पुस्तकों की आदि में पाया जाता है [illegible] मंगलाचरण के रूप में ही हमने भी [illegible] है

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना ।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ॥
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवत श्रीपादमूलेऽधुना ।
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिपुं सत्पथे ॥ २ ॥

अर्थ—हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्र ! अत्यन्त पापी, दुरात्मा, जड बुद्धि मायावी, लोभी और राग-द्वेष से मलीमस मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका, निरंतर सन्मार्ग में चलने की इच्छा रखता हुआ आज मैं आपके चरणमूल में अपनी निन्दापूर्वक त्याग करता हूं ॥ २ ॥

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केण वि ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं सब जीवों से क्षमा की याचना करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, मेरा सब जीवों में मैत्री भाव है, किसी के भी साथ मेरा वैरभाव नहीं है ॥ ३ ॥

रागबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥ ४ ॥

अर्थ—मैं राग द्वेष हर्ष, दीनभाव, उत्सुकता भय, शोक, रति और अरति इन सबका त्याग करता हूं ॥ ४ ॥

हा दुट्ठं कयं हा दुट्ठचिंतयं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेदंतो ॥ ५ ॥

अर्थ—हा ! मैंने काय से कोई दुष्ट कार्य किया हो, हा ! मैंने मन से कोई दुष्ट चिन्तन किया हो, और हा ! मैंने मुख से कोई दुष्ट वचन बोला हो उसका मैं बुरा समझता हुआ पश्चात्ताप पूर्वक मन ही मन जल रहा हूँ ॥ ५ ॥

दव्वे खेत्ते काल भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदण गरहण जुत्तो मण वच कायेण पडिकमणम् ।६

अर्थ-आहार-शरीर आदि द्रव्य, वसतिका शयन आदि मार्ग रूप क्षेत्र, पूर्वाह्ण मध्याह्न अपराह्ण दिवस रात्रि पक्ष मास संवत्सर अतीत अनागत वर्तमान आदि काल और संकल्प विकल्प रूप खोटे चित्त व्यापार से किये गये अपराधोंका, निंदा गर्हा से युक्त होकर शुद्ध मन वचन और काय से शोधन करना प्रतिक्रमण है ॥ ६ ॥

एइंदिया, बेइंदिया तेइंदिया चतुरिंदिया पंचिंदिया, पुढविकाइया अपूकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणफ्फदिकाइया तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ७ ॥

अर्थ—एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक और त्रसकायिक इन सब इंद्रिय और कायिक जीवों का उत्तापन परितापन विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया

हो, औरों से कराया हो स्वयं करते हुए दूसरों की अनुमोदना की हो उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥८॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अर्थ-व्रत, समिति, इन्द्रियनिरोध, लोच, आवश्यक, अचेल (वस्त्र त्याग) स्नान त्याग, क्षितिशयन, अदन्तवन, स्थितिभोजन, और एक भक्त ये श्रमण-मुनियों के मूलगुण (प्रधान-आचरण) है जो सभी जिनेन्द्रों के द्वारा सब प्रथम कहे गये हैं उनमें प्रमादवश किये गये अतिचार (दोष अपराध) से निवृत्त होता हू। मेरे पुनः छेदोपस्थापना हो।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यक क्रियाअष्टाविंशति-मूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अर्थ—पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियनिरोध, लोंच छह आवश्यक क्रियाएं इत्यादि अट्ठाईस मूलगुण उत्तमक्षमा उत्तम मार्दव उत्तम आर्जव उत्तमशौच उत्तम सत्य उत्तम संयम उत्तमतप उत्तम त्याग उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दशलाक्षणिकधर्म अठारह हजार शील चौरासी लाखगुण, तेरह प्रकार चारित्र बारह प्रकार तप ये सब परिपूर्ण उत्तम सब अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु इन पांच की साक्षी में सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत तुम्हें और मेरे में समारूढ़ हो समारूढ़ हो समारूढ़ हो।

सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं रात्रिकप्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आलोचनासिद्धभ-क्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

अर्थ दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रिया में सब दोषों की विशुद्धि के निमित्त किये हुए दोषों के निराकरणार्थ सकल कर्मों के क्षय के लिए, पूर्वाचार्यों के अनुक्रम के अनुसार भावपूजा वन्दनास्तव सहित आलोचनायुक्त सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूं।

(अपराह्न में दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण में 'दैवसिक' शब्द का प्रयोग करें) इति प्रतिज्ञाप्य

णमो अरहंताणमित्यादि सामायिकदंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् ।

थोस्सामीत्यादि (चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्)

इस प्रकार प्रतिज्ञापन कर णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढकर सत्ताइस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशतिस्तव पढे

फिर मुख्य मंगल पढे

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे ।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥ १ ॥

जिनके अनन्त ज्ञानादि अन्तरंग विभूति और समवशरण बहिरंग विभूति विद्यमान है जिनने उपसर्ग करने वाले संगम देव आदि शत्रुओं को भी अपने चरणों में झुकाया है एसे अंतिम तीर्थंकर भगवान वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार हो। जिनके ज्ञानमें तीन लोक गोष्पद के समान झलकता है ॥ १ ॥

सिद्ध भक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।२।

तप से सिद्ध, नयसे सिद्ध संयम से सिद्ध चारित्र से सिद्ध ज्ञानमें सिद्ध और दर्शन में सिद्ध हुए ऐसे सब सिद्धों को मैं शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

अचलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्तिकाओसग्गो कओ तस्सा लोचेउ, सम्मणाणसम्मदसणसम्मचरित्तजुत्ताण, अट्ठविहकम्ममुक्काण अट्ठगुणसपण्णाण, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयिट्ठियाण, तवसिद्धाण, णयसिद्धाण, सजमसिद्धाण, चरित्तसिद्धाण, अतीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाण, सव्वसिद्धाण, णिच्चकाल, अ चेमि पूजेमि, वन्दामि, णमसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगईगमण, समाहिमरण जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झ ।

हे भगवान ! मैंने सिद्ध-भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूं । जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं आठ प्रकार के कर्मों से मुक्त हैं आठ गुणों से सम्पन्न हैं उर्ध्व लोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित हैं, तप सिद्ध हैं नयसिद्ध हैं, सयम सिद्ध हैं, चारित्र सिद्ध हैं, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से सिद्ध हैं, अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों में सिद्ध हुए उन सब सिद्धों की नित्यकाल अर्चा करता हूं पूजा करता हूं वन्दना करता हूं नमस्कार करता हूं । मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोध रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र के गुणों का सम्यक् प्राप्ति हो ।

आलोचना

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाईया जीवा अणंताणंता हरिया बीआ अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

हे भगवान ! पांच महाव्रत पांच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का चारित्र है उसका मैंने प्रमाद वश परिहापन (खंडन) किया हो उसकी आलोचना-विशुद्धि करना चाहता हूँ। उस तेरह प्रकार के चारित्र में पहला महाव्रत प्राणों के व्यतिपात से रहित है। उसमें मैंने असंख्यातासंख्यात पृथ्वी कायिक जीव असंख्यातासंख्यात अप्कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात तेजस्कायिक जीव असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीव अनन्तानन्त वनस्पतिकायिक जीव तथा हरित (सचित्त) बीज अंकुर छेद भेद, उनका उत्तापन परितापन विराधन और उपघात

किया है, कराया है और करन वाले की अनुमोदना की है उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या होय ॥ १ ॥ ❀

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमि संख गंडुलुय वराडय–अक्खरिट्ठवाल संबुक्क–सिप्पि पुलकिनाइया तेसिं उद्दावरण परिदावरण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

कुक्षि कृमि (लट) शंख गुन्डार वराटक अक्ष अरिष्ट वाल मयूक, माप पुलकिक इत्यादि असंख्यातासंख्यात संख्या प्रमाण जो द्वीन्द्रिय जीव है उनका उत्तापन परितापन विराधन और उपघात मैंने किया हो कराया हो और करने वाले की अनुमोदना की हो उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ २ ॥ ❀

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु–देहिय–विछियगोभिंद–गोजुव–मक्कुण–पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ३

कुन्थु देहि बिच्छु गोभि गोजा, खटमल पिपालिका इत्यादि असंख्यातासंख्यात संख्या प्रमाण जो त्रीन्द्रिय जीव हैं उनका उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने किया

❀–पुलवी य जम्मगणा जायु जणकदि सलिना कायो।
दोन खलु मोहतहल फास बहुगा वि ते तसि ॥ ११० ॥

❀–संबुक्क–मादुवाहा संखा सिप्पा अपादगा य किमी।
जाणंति रस फासं जे ते बे इन्दिया जीवा ॥ १२८ ॥

हो, कराया हो और करने वाले को अनुमोदना की हो उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ३ ॥ ❀

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दसमसयम-च्छियपयंगकीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, तेसिं उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ४

दंश मशक, मक्खी पतंग कीड़ा, भौंरा, मधुकर, गोमक्खिका इत्यादि असंख्यातासंख्यात संख्या प्रमाण जो चौ इंद्रिय जीव हैं उनका उत्तापन परितापन, विराधन और उपघात मैंने किया हो, कराया हो और करने वाले को अनुमोदना की हो उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ४ ॥ ❀

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहस-दसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

❀-जूगा ■ भी मक्कुण पिपीलिका विच्छिया कादा ।
जाणंति रसं फासं गंधं तइंदिया जीवा ॥ ११५ ॥
❀-उद्द समसय मक्खिय मधुरर भमरा पतंगमादीया ।
रूपं रसं च गंधं फासं पुण ते वि जाणंति ॥ ११६ ॥

अंडज पोतज जरायुज रसज, संस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम औपपादिक और भी चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न इत्यादि असंख्यातासंख्यात अग्रायप्राणी पंचेन्द्रिय जीव मेरे द्वारा रसापित, परितापित, विराधित और उपघात किए गए हों, कराए हों और करते हुए की अनुमोदना की हो। उसका मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥४॥

प्रतिक्रमण पीठिकादण्डक

इच्छामि भंते ! (देवसियम्मि) राईयम्मि आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणादो वेरमणं, ईरियासमिदीए भासासमिदीए एसणासमिदीए आदाणणिक्खेवणसमिदीए, उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणियासमिदीए, मणगुत्तीए वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए णाणेसु दंसणेसु चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु पणवीसाए किरि-

---

४-सुर-णर-णारय-तिरिया वण्ण-रस-फास-गंध-सद्दण्हू ।
जलचर-थलचर-खचरा बलिया पंचिंदिया जीवा ॥ ११७ ॥
—पंचत्थिपाहुड ।

यासु, अट्ठारस मीलसहस्सेसु चउरासीदिगुण सयसहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अङ्गाणं चोदसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं मुंडाणं दसण्हं समणधम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं णवण्हंबम्भचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं अट्ठण्हंकम्माणं अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहं संसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समीदाणं पंचण्हं चरित्ताणं चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं दिट्ठिय ए पुट्ठियाए पदोसियाए परदावणियाए, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा एदेसिं अच्चासणदाए तिण्हं दण्डाणं तिण्हं लेस्साणं तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थसंकिलेस परिणामाणं मिच्छणाणं मिच्छादंसणं मिच्छाचरित्ताणं मिच्छत्तपाउग्ग

असंयम पाउग्ग, कुमाय पाउग्ग, भोगपाउग्ग, अपाउग्ग-विवरदाए, पाउग्गगहणदाए, इत्थ मे जो कोई (देवसिओ) राइओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो। तस्स भंते ! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं, पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं ॥ २ ॥

हे भगवान् ! व्रत समिति गुप्ति आदि में प्रमादादि वश जो कोई दैवसिक (रात्रिक) दोष लगे हैं उनकी आलोचना विशुद्धि करना चाहता हूँ।

पांच महाव्रत हैं उनमें पहला महाव्रत प्राणों के व्यपरोपण से रहित है दूसरा महाव्रत असत्य भाषण से रहित है तीसरा महाव्रत अदत्तादान से रहित है चौथा महाव्रत मैथुन से रहित है पांचवां महाव्रत परिग्रह से रहित है तथा छट्ठा अणुव्रत रात्रि भोजन से विरहित है। ईर्यासमिति भाषा समिति एषणा समिति आदान निक्षेपण समिति और उच्चार प्रस्रवण खेल सिंहाणक विकृति प्रतिष्ठापन समिति ये पांच समिति (सम्यक्प्रवृत्ति) हैं तथा मनगुप्ति वचन गुप्ति और कायगुप्ति ये तीन गुप्ति हैं। तथा ज्ञान दर्शन चारित्र बाईस परीषह पच्चीस भावना पच्चीस क्रिया, अठारह हजार शील, चौरासी लाख गुण बारह संयम, बारह तप बारह अंग, चौदह पूर्व, दशमुंड, दश श्रमणधर्म, दश धर्मध्यान, नव

ब्रह्मचर्य गुप्ति, तथा नव नोकषाय, सोलह कषाय, आठ कर्म आठ प्रवचन-मातृका आठ शुद्धि सात भय, सप्तविध संसार, छह जीवनिकाय, छह आवश्यक, पांच इन्द्रिय, पांच महाव्रत पांच समिति, पांच चारित्र चार संज्ञा, चार प्रत्यय, चार उपसर्ग, मूल गुण, उत्तरगुण, तीन दंड, तीन लेश्या तीन गारव, दो आर्त रौद्र रूप संक्लेश परिणाम, तीन अप्रशस्त संक्लेश परिणाम, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्या चारित्र, असंयमप्रायोग्य, कषाय प्रायोग्य, योग्य प्रायोग्य, अप्रायोग्य सेवनता, प्राथोग्य ग्रहणता इन सब विधि प्रतिपक्षरूप यतियोंके आचरणोंमें दृष्टि क्रिया, पृष्टिक्रिया प्रादोषिकी क्रिया और परतापनिकी क्रिया से तथा जो कोई दोष लगा हो तथा क्रोध, मान माया, लोभ राग द्वेष मोह, हास्य, भय, प्रदोष, प्रमाद, प्रेम, पिपासा, लज्जा और गौरव से इन में जो अत्यासनता (अवहेलना) हुई है। उनमें जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग दोष लगे हैं उन सबका हे भगवान्! प्रतिक्रमण करता हूँ—उन सब में लगे अतिक्रमणादि दोषों को दूर करता हूँ। इस प्रकार अतिक्रमणादि दोष मैंने दूर किये उनका शोधन किया। उस मेरे दोष शोधन करने वाले का सम्यक्त्वयुक्त मरण, समाधिमरण पण्डितमरण, वीर्यमरण होवे दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय बोधि—रत्नत्रय का लाभ, सुगतिमें गमन, और जिनेन्द्र के गुणों की संप्राप्ति मेरे होवे।

उपर्युक्त दंडक में आए व्रतों का स्पष्ट विवरण

(कृपया क्रम से मिलाकर पढिए)

१—पाचप्रकार मतिआदि २—तीनदर्शन औपशमिक आदि ३—पाच चारित्र सामायिक आदि ४ क्षुधाआदि ५—बाह्—मना गुप्ति आदि ६—सम्यक्त्व वर्धिनी क्रिया का अनुष्ठान, मिथ्यात्व क्रिया आदि चौबीस क्रियाओं का अननुष्ठान ७—८ परमागमर्म प्रसिद्ध ९–१०–११—१२ प्रसिद्ध १३ पांच इन्द्रियमुंड, वचनमुंड हस्तमुंड पैरमुंड शरीरमुंड मनमुंड इन दश का निरोधन १४ उत्तमक्षमा आदि १५—अपायविचय, उपाय विचय विपाक विचय, विराग विचय लोक विचय—भव विचय, जीव विचय आज्ञा विचय, संस्थानविचय, और संसारविचय १६—तिर्यचस्त्री मनुष्यस्त्री और देवस्त्री (देवांगना) इन तीन मन वचन और काय से असेवन अथवा स्त्रीसामान्य का मन वचन काय से और कृत कारित अनुमोदना विशेष से असेवन । १७–१८ इन्हें उत्पन्न न होने देना, उत्पन्न होने पर आलोचना करना १९ क्रोधाविष्ट उपासन करने पर आलोचना करना २० पांच समिति तीन गुप्ति इन आठ का अनुष्ठान न करे तो आलोचन करे २१ मनशुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, भिक्षाशुद्धि ईर्याशुद्धि, उत्सर्गशुद्धि शयनासनशुद्धि और विनयशुद्धि इन आठ शुद्धियों का मुनि प्रतिदिन अनुष्ठान करे न करे तो आलोचना करे २२ इह-परलोक भयादि इनका प्रतिदिन त्याग करे सूत्र ३२.

बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय सज्ञी और असज्ञी इन सात कारण यम और उन्द्र प्रतिदिन पाठा आदि न ˜ प्रमादवश ˜ ता आलोचना करे ˜८ इनकी हिंसा आदि न करे ˜५-प्रतिदिन इनका अनुष्ठान अवश्य करे ˜६ इनका निरोध ˜७ ˜८ २६ इन सब का प्रति दिन अनुष्ठान करे ३० इनका निग्रह करे ३१ कर्म बन्ध के कारण मिथ्या आदि प्रत्ययोंका नित्य त्याग करे ३२ देव मनुष्य तिर्यच और अचेतन कृत उपसर्ग आ उपस्थित हो तो सहन करे न कर सके तो आलोचना करे ३३ ऋद्धि गारव, रस गौरव स्वात गौरव इनका परिहार करे ३४ आर्तरौद्र संक्लेश परिणामों को आदि लेकर प्रायोग्य गहवना पर्य त के सब आचार निषिद्धाचार हैं उनका सेवन न करे ३५ स्त्री पुरुषों के अगोपागों का अभिलाषा पूर्वक देखना ३६ उन्हा के अगोपांगो का सानुराग स्पर्श करना ३७ दुष्प्रवचन वचन और कायका व्यापार।

३८ पर को पीड़ा देना ३६ स्नेह ४० विषयों की प्रत्यन्त लालसा ४१ महारम्भिप्राय ४२ किसी एक व्यासग से अथवा चित्त के सक्लेश से आगमोक्त कालसे अधिक काल तक आवश्यकादि क्रियाओंका करना अतिक्रमों मानसशुद्धिहानि ४३ विषय के व्यासगादि द्वारा आगमोक्त क्रिया कालसे हानकाल में क्रिया करना व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाष ४४ आवश्यकादि क्रियाओं के करनेमें आलस्यादि करना तथातिचार करणालसत्व ४५ व्रत

समिति आदि व्रतों का आचरण न करना या खंडन करना, भगो ह्यनाचारमिह व्रतानामिति ८६ कापोतलेश्या वश पूजा महत्त्व की अभिलाषा से प्रकट रूप व्रतों का अनुष्ठान करना ८७ लज्जा आदिके वश लोगों से छिपाकर अनुष्ठान करना ८८ इनका अर्थ ऊपर आ चुका है।



प्रतिक्रमणभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्गकी प्रतिज्ञा

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं रात्रि (दैवसिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीप्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

अब मैं सब अतिचारों की विशुद्धि के अर्थ प्रतिक्रमण क्रिया में किये गये दोषों के निराकरणार्थ पूर्वाचार्यों की परिपाटी के अनुसार सकल कर्मों के क्षय निमित्त, भावपूजा वन्दना स्तव सहित प्रतिक्रमण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ—

णमो अरहन्ताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्, अनन्तरं थोस्सामीत्यादि पठेत्।

प्रथम णमो अरहंताणं, इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे पश्चात् चतुर्विंशति-स्तव पढ़े।

निषिद्धिका दण्डक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

अर्हन्तों को नमस्कार हो सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोकवर्ती सब साधुओं को नमस्कार हो। (इस गाथा को तीन बार पढ़े)

णमो जिणाणं ३, णमोणिस्सिहीए ३, णमोत्थु, दे ३, अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाण सल्लघत्ताणं ! णिब्भय ! णीराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिस्सल्ल ! माण-माय-मोस मूरण ! तवप्पहावण ! गुणरयण ! सील-सायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदिमहावीरवड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए।

संसार को नाश के कारण कर्मरूप शत्रुओं को जीतलेने वाले जिनेन्द्रों को नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो निषिद्धिकाओं × को नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो। हे

× जिण सिद्धबिंवणिलया किदगाकिदगा य रिद्धिजुदसाहू।
णाणजुदा मुणिपवरा णाणुप्पत्ती य णाणिजुद खेत्तं ॥ १ ॥
सिद्धा य सिद्धभूमी सिद्धाण समासिओ णहो देसो।

घाति कर्म क्षय कारक अर्हन्त ! हे निःशेष कर्मोन्मूलक सिद्ध ! हेयोपादेय विवेक सम्पन्न बुद्ध ! हे ज्ञान-दर्शनावरण रज से रहित नीरज ! हे द्रव्यभाव कर्म रहित निर्मल ! हे तृण काञ्चन और शत्रु मित्र तुल्य मन सम मन ! हे आर्त-रौद्र रहित सुमन हे काय क्लेशानुष्ठान और परिषह सहने में सुसमर्थ ! हे परमोपशम से युक्त शमयोग ! हे संसार के उपशम अथवा रागद्वेष के परिहार के लिए द्वादश अनुप्रेक्षा भावना रूप भाव याने शम भाव ! इस प्रकार के आप जो अर्हन्तादिक हैं आपको सबको नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो। इस प्रकार सामान्यतः अर्हन्त आदिकों की स्तुति कर पुनः विशेषरूप से अन्तिम नाथकर की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे माया मिथ्या और निदान रूप शल्यों से पीड़ित जीवों के उन शल्यों के विनाशक ! हे सप्त भयों से रहित निर्भय ! हे राग-द्वेष से निष्क्रान्त नीराग ! हे निष्कलंक अथवा अष्टादश दोषों से रहित निर्दोष ! हे अज्ञान अथवा

सम्मत्ताण्णिवसक उप्पण्ण जेसु वहि सिग्धेस ॥ २ ॥

धम्म सरि य दहे तहरिय जत्तु ता णिमाहाभ्रा ।
जसु निशुद्धा जोगा जोगवरा जेसु मटिया सम्म ॥ ३ ॥
णागियरिमुक्कदेहा पडिम्मरणट्टिदा णिमाहाओ ।
तिविह पडिद मरणे चिट्ठ ति महामुणी समाहीए ॥ ४ ॥
गथाग्धा अरणाभ्रा णिसःहियाभ्रा सया वन ॥
णि त्ति य णिरमेहि जुत्ता सि त्ति य सिद्धि तहा अहिगमि ।
वि नि य विन्दिद्धकओ ए त्ति य णिग्ग सासण भत्तो ॥ ५ ॥

दर्शनमोह और चारित्र मोह से निष्क्रान्त निर्मोह ! हे किसी विषय में ममता रहित निर्मम ! हे बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित निःसंग ! हे माया आदि शल्यों विरहित निःशल्य ! हे मान माया और मृषाके मर्दक मान माया मोष मूरण ! हे तप प्रभावक ! हे चौरासी लाख गुण रूप रत्नों के भण्डार गुण रत्न ! हे अठारह हजार शीलों के समुद्र शीलसागर ! हे अनन्त केवल ज्ञान दर्शन आदि से युक्त अनन्त ! हे इन्द्रिय ज्ञान से अपरिच्छेद्य अप्रमेय ! हे महति महावीर*वर्धमान ! हे यथावत् परिज्ञात अशेषार्थ स्वरूप केवलज्ञानादि नवलब्धि संपन्न ! बुद्ध र्षिन् ! आपको त्रिवार नमस्कार हो।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केव-लिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदस-पुव्वगामिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य बारहविहो तवस्सी गुणा य गुणवन्तो य महरिसी तित्थं तित्थ-

*—महतिमहावीर और वर्द्धमान ये दोनों नाम अन्तिम तीर्थंकर के हैं। क्योंकि गर्भावतरादि के समय इन्द्रों ने भगवान की बड़ी भारी अनन्यसंभवा पूजा की थी इसलिए उनके बन्धु जनों ने वर्धमान यह नाम रखा और ध्यान में स्थिर भगवान को रुद्रने ध्यान से विचलित करने के लिए भारी उपसर्ग किया था फिर भी भगवान उपसर्ग से विचलित नहीं हुए इसलिए रुद्र ने उनका नाम महति महावीर रक्खा।

करा य, पवयण पवयणी य, णाण णाणी य, दसण-दसणी य संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बभचेरवासो बभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमतो य, मुत्तिओ चेव मुत्तिमन्तो य, समिदीओ चेव समिदिमतो य, सुसमयपरसमयविदू, खत्तिवखवगा य, खतिवतो य खीणमोहा य खीणवतो य बोहियबुद्धा वुद्धिमतो य, चेइयरूक्खा य चेइयाणि।

अर्हन्त, सिद्ध, जिन, केवली, अवधिज्ञानी, मन पर्यय ज्ञानी चौदह पूर्व और द्वादशांग के ज्ञाता, कालिक उत्कालिक आदि भेदों से विभक्त अगबाह्य श्रुतसमूह से समृद्ध, बारह तप और तपके धारक तपस्वी, चौरासी लाख गुण और उन गुणों से युक्त मुनि, कोष्ठबुद्धि बीज बुद्धि आदि उत्कृष्ट ऋद्धियों से सपन्न महर्षि तीर्थ आगम और तदाधारमय, और तीर्थङ्करदेव तथा गणधरदेव, पूर्वापर दोषों से रहित प्रवचन और प्रकृष्ट वचनों से युक्त मुनि, मत्यादि पांच प्रकार के ज्ञान और इस ज्ञानसे युक्त ज्ञानी, औपशमिकादि तीनों दर्शन और उन दर्शनों से युक्त दर्शनी, द्वादश संयम और सयम से युक्त सयत, ज्ञान दर्शन चारित्र और उपचार लक्षण चतुर्विध विनय और विनय से युक्त विनीत ब्रह्मचर्याश्रम और ब्रह्मचारी, गुप्तियां और गुप्तिमान बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त मुक्तियां और तद्वान आत्मा, समितियां और समितियों के धारक स्वसमय और पर समयवेत्ता,

क्षान्तिक्षपक (श्रेण्यारूढ मुनि) क्षीणमोह (क्षीणकषाय गुण स्थानवर्ती मुनि) बोधित बुद्ध (जो परके उपदेश से संसार शरीर विषया आदि से विरक्त हुए हैं) और बुद्धिप्रभृति ऋद्धियों के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्य ये सब मेरे पापमल का गालन और सुख के देने वाले होवें।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमसामि, सिद्धणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, ईसिपब्भारत-लगयाण सिद्धाण बुद्धाण कम्मचक्कमुक्काण णीर-याण णिम्मलाण, गुरुआइरिय-उवज्झायाण, पव्वत्ति थेरकुलयराण, चउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मङ्गलं पवित्तं, एदहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलि मत्थयम्मि, तिविहं, तियरणसुद्धो ॥ ९ ॥

मैं ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक्लोकवर्ती सब सिद्धायतनों को नमस्कार करता हूं। कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, ऊर्जयन्तपर्वत, चंपापुर, पावापुर, मध्यमपावा, हस्तिवालक मंडप इन पर जो सिद्धनिषिद्धिकाएं (निर्वाण क्षेत्र) हैं उन सबको नमस्कार करता हूँ।

इनके अलावा अन्य ढाई द्वीप और दो समुद्र में सिद्धशिला के उपरिभाग में अवस्थित सब सिद्ध बुद्ध कर्मरजमुक्त, नीरज, निर्मल गुरु आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर इनमें जो कोई भी अन्य सिद्धिपद हैं उन सबको नमस्कार करता हूँ। तथा चार भरत पांच ऐरावत और पांच विदेह में ऋषि, यति मुनि और अनगार रूप जो चातुर्वर्ण्य श्रमण संघ है और लोक में मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त क्षेत्रों में जो साधु सर्वत तपस्वी हैं वे मेरे लिए पवित्र मंगल स्वरूप होवें। जिससे कि देव वन्दना प्रतिक्रमण और स्वाध्याय इन चारों क्रियाओं के अनुष्ठान में मन, वचन काय व तीनों करण शुद्ध हुए हैं भाव से विशुद्ध हुआ अंजलि मस्तक पर रख करके सिर से सिद्धों को वन्दना कर मैं इन सबकी स्तुति करता हूँ।

(इति निषिधिका दण्डक)

पडिक्कमामि भंते ! राइयस्स (देवसियस्स) अइचारस्स अणाचारस्स मणदुच्चरियस्स वचिदुच्च-रियस्स कायदुच्चरियस्स णाणाइचारस्स दंसणाइ-चारस्स तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचा-रस्स पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं तिण्हं गुत्तीणं छण्हं आवासयाणं छण्हं जीवणिकायाणं विरा-हणाए पील कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु-

मणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड । १ ।

हे भगवन् ! देवसिक (र त्रिक) व्रतों में लगे अतिचार और अनाचार का प्रतिक्रमण-निराकरण करता हूँ। मनकी कुचेष्टा, वचन की कुचेष्टा और काय की कुचेष्टा का प्रतिक्रमण-त्याग करता हूँ। ज्ञान के अतिचार, दर्शन के अतिचार, तपके अति चार, वीर्य के अतिचार और चारित्र के अतिचार का निराकरण कर ज्ञानादिक को निर्मल करता हूँ। पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, छह आवश्यक और छह निकाय के जीवों की विराधना के होने पर जो मैंने पीडा दी है, अन्य से कराई है, स्वय करते हुए अन्य की अनुमोदना की है उस पीडा सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या होवे ॥१॥

पडिक्कमामि भन्ते ! अइगमणे णिग्गमणे ठाणे गमणे चंकमणे उव्वत्तणे आउट्टणे पसारणे आमासे परिमासे कुइदे कक्कराइदे चलिदे णिसण्णे सयणे उव्वट्टणे परियट्टणे एइंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पंचिंदियाण जीवाण संघट्टणाए उद्दावणाए परिदावणाए विराहणाए एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो),अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड । २ ।

हे भदन्त ! अतिगमन, निगमन, स्थान, गमन, चंक्रमण, उद्वर्तन, परिवर्तन, आकुञ्चन, प्रसारण, आमर्श, परिमर्श

कैसे चलते हुए विराधना की ? उसे बताते हैं-ऊ चा मुख उठाकर चलते हुए, नीचा मुख झुकाकर चलते हुए, चारों दिशाओं का अवलोकन निसमें हो जाय इस प्रकार चलते हुए, चारों विदिशाओं का अवलोकन निसमें हो जाय इस प्रकार चलते हुए विकल त्रय प्राणों के ऊपर चलने से, गेहूँ चौ चना आदि बीजों पर चलने से, हरित-वनस्पतिकाय के ऊपर चलने से, उत्तिंग, पणय (कांजी), रुक, मृत्तिका, मर्कट, तन्तु, पृथ्वी-जल-अग्नि और वायु इन सत्त्वों पर चलने से, पृथ्वीकायिक जीवों का हाथ पैर आदि से संघट्टन करके, जलकायिक जीवों का संघट्टन करके तैजसकायिक जीवों का संघट्टन करके वायुकायिक जीवोंका संघट्टन करके, वनस्पति कायिक जीवों का संघट्टन करके तथा त्रसकायिक जीवों का संघट्टन करके उत्तापना-प्राणों का वियोग कर, परितापना कर, विराधना कर इस प्रकार अनेक प्रकार से पीड़ा देकर जो कोई भी मरे त्रस आदि के विषयमें दैवसिक (रात्रिक) अतिचार या अनाचार हुआ है उस अतिचारादि सम्बन्धी दुष्कृत (पाप-दोष) मेरा मिथ्या होवे इस प्रकार प्रतिक्रमण करता हैं ॥ ३ ॥

पडिक्कमामि भन्ते ! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण वियडिपयट्ठावणियाए पइट्ठावतेण जो कोई पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा उद्दाविदा वा इत्थ मे जो कोई राईओ देवसिओ अईचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड

हे भन्ते ! उच्चार, प्रस्रवण, दूधन, सिंहाणक इत्यादि इनके क्षेपण करने में जो दोष लगा है उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। इनका निक्षेपण करते हुए मैंने जो कोई भी विकलत्रय प्राण, वनस्पतिकायिक भूत, पंचेन्द्रिय जीव, और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु सत्त्व इनको संघट्टन किया है संघात किया है अथवा मारा है अथवा संताप पहुँचाया है इन सब संघट्टन आदि के करने में मेरे जो कोई भी व्रतों के विषय में दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अथवा अनाचार प्रादुर्भूत हुआ है उन अतिचारादि सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या होवें—निष्फल होवें इस प्रकार दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ ॥४॥

पडिक्कमामि भन्ते ! अणेसणाए पाणभोयणाए पणयभोयणाए बीयभोयणाए हरियभोयणाए आहा-कम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा णिहिट्ठियडेण वा दयसंसिट्ठयडेण वा रससंसिट्ठयडेण वा परिसादणियाए पइट्ठावणियाए उद्देसियाए णिद्देसियाए कीदयडे मिस्से जादे ठविदे रइदे अणिसिट्ठे बलिपाहुडदे पाहुडदे घट्टिदे मुच्छिदे अइमत्तभोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

हे भदन्त ! अनेषणा से अयोग्य सावद्य उद्गमादि दोषों से दूषित चतुर्विध आहार के ग्रहण करने से जो दोष उत्पन्न हुआ

है उसका प्रतिक्रमण करता हूँ पान भोजन×, पयण भोजन—,
भोजन, हरित भोजन, षट् जीव निकाय की विराधना से उत्प
आध कर्म भोजन पश्चात् कर्म, पुराकर्म, उद्दिष्टकृत, निर्दि
कृत, स्कमसृष्टकृत, रससंसृष्ट परिसातनिका, प्रतिष्ठापनिक
उद्देसिका, निर्देसिका, क्रीतकृत, मिश्र जात, स्थापित, रचि
अनिसृष्ट, बलिप्राभृत, प्राभृत, घट्टित मूर्च्छित, परिमाण
अधिक इन दोषों से मात्राधिक भोजन युक्त आहार इस
प्रकार अनेषणा में जो कोई गोचरी सम्बन्धी अतिचार अथ
अनाचार हुआ है तत्सम्बन्धी दुष्कृत मेरा मिथ्या होवे ॥५॥

पडिक्कमामि भन्ते ! सुमणिंदियाए विराहणा
इरियविप्परियासियाए दिट्ठिविप्परियासियाए मणवि
प्परियासियाए वचिविप्परियासियाए कायविप्परिया-
सियाए भोयण विप्परियासियाए उच्चावयाए सुमण-

*—योग्य निरवद्य चार प्रकार के आहार के ग्रहण को एषणा कहते हैं। इस एषणा के अभावको अनेषणा अर्थात् उद्गमादिदोषों से दूषित आहार ग्रहण को अनेषणा कहते हैं।

×—प्राणों के अनुग्रहार्थ जो पिया जाय उसे पान कहते हैं उस स्निग्ध रूक्ष आदि पान के भोजन से अथवा पान और भोजन से।

—पूलन युक्त कांजिक मथितादि भोजन के करने से अथवा मृष्य (पौष्टिक) आहार।

दसणविप्परियासियाऐ पुव्वरए पुव्वमेलिए णाणाचि-
तासु विसोतियासु इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ
अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।६।

हे भदन्त ! स्वप्नमें जो विराधना याना विपरीत परिणति हुइ उसमें जो दोष लगे हैं उनका परिशोधन करता हू। यह विराधना जैसा होती है वैसी दिखाते हैं पूवरत और पूवप्रशित नाना चिन्ताओं में स्त्री विपयासिका, दृष्टि विपयासिका, मन विपर्यासिका, वचन विपयासिका, कायविपर्यासिका, भाजन विपर्यासिका उच्छ्वावजात और स्वप्न दर्शन विपयासिका इस प्रकार स्वप्नमें विपरीत परिणतिरूप विराधना होता है उसमें मेरे जो कोइ देवसिक (रात्रिक) अतिचार और अनाचार हुआ है, तत्सम्बन्धी दुष्कृत मेरा मिथ्या होवे ॥६॥ ×

पडिक्कमामि भंते ! इत्थीकहाए भत्तकहाए
रायकहाए चोरकहाऐ परपासंडकहाऐ देसकहाऐ भास-
कहाऐ अकहाऐ विकहाऐ णिठुल्लकहाऐ परपेसुण्णक-
हाए कंदप्पियाऐ कुक्कुच्चियाऐ डवरियाऐ मोक्खरि-
याऐ अप्पपसंसणदाऐ परपरिवादणदाऐ परदुगंछ

×स्वप्न से ह्रीं द्रव्य नियम उपहत (नष्ट) हो जाती है उस स्व नेन्द्रिय की विराधना रूप विपरीत परिणति को होने पर जो दोष संभव हुआ है उसका प्रतिक्रमण-परिशोधन करता हूँ।

णादाऐ परपीडाकराऐ सावज्जाणुमोयणियाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥७॥

हे भदन्त ! निम्न कथाओं में लग दोषों का प्रतिक्रमण करता हू । स्त्रीकथा, अर्थकथा, भक्तकथा राजकथा, चोरकथा, वैरकथा परपाखडकथा भाषाकथा अकथा विकथा निष्ठुरकथा परपैशून्य कथा कन्दर्पिका कौतकुचिका डवरिका, आत्मप्रशसनता परपरिवादनता, परजुगुप्सनता परपीडाकरा और सावद्यानुमोदिया इन उक्त प्रकार कथाओं में मेरे जो कोई देवसिक (रात्रिक) अतिचार अनाचार हुआ है उस अतिचारादि सब ही दुष्कृत मेरे मिथ्या होवें ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! इन कथाओं के करने में जो मेरे सदाचरण में अतिचारादि दोष उपार्जित हुए हैं उनका प्रतिक्रमण करता हूँ मैं उन्हें दूर कर अपना चारित्र को उज्वल करता हूँ ।

स्त्रियों के वचन नयन, नाभि, नितंब आदि का शोभा कथायर्णन रूप कथा स्त्रीकथा अथवा उपार्जन रक्षण आदि वर्णन रूप कथा अर्थकथा, भोजन का वर्णन रूप कथा भक्तकथा राज्य अथवा राजा की कथा राजकथा चोरों की कथा चोरकथा पडिक्कमामि भंते ! अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे इहलोय-सण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए वाहरताए माणस-

सल्लाए मायासल्लाए लोहमल्लाए पेम्मसल्लाए पिवा-सल्लाए णियाणसल्लाए मिच्छादसणसल्लाए कोह-कसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाये किण्ह-लेस्सपरिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्सपरि-णामे आरम्भपरिणामे परिग्गहपरिणामे पडिसयाहि-लासपरिणामे मिच्छादसणपरिणामे असजमपरिणामे पावजोगपरिणामे कायसुहाहिलासपरिणामे सद्देसु रूवेसु गन्धेसु रसेसु फासेसु काइयाहिकरणियाए पदो-सियाए पारिदावणियाए पाणाइवाइयासु इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥८॥

हे भगन्त इन आर्त ध्यान आदि के करने में जो दोष हुए हैं उनका प्रतिक्रमण निराकरण करता हूँ आर्त ध्यान रौद्रध्यान, इहलोकसज्ञा, परलोकसज्ञा, आहारसज्ञा, भयसज्ञा मैथुनसज्ञा परिग्रहसज्ञा क्रोधशल्य, मानशल्य, मायाशल्य, लोभशल्य प्रेम-शल्य पिपासाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य, क्रोधकषाय मानकषाय मायाकषाय, कृष्णलेश्यापरिणाम, नीललेश्यापरिणाम कापोतलेश्यापरिणाम आरभपरिणाम, परिग्रहपरिणाम प्रतिश्रया-भिलाप परिणाम मिथ्यादर्शनपरिणाम असयमपरिणाम, कषाय परिणाम, पापयोगपरिणाम, कायसुखाभिलाप परिणाम, शब्द रूप, गन्ध, स्पर्श, कायिकाधिकरणिका प्रदोषिकी पारितापनिकी

प्राणातिपातिका इन आर्त्त ध्यानको आदि लेकर प्राणातिपाति क्रियापर्यन्त में मेरे जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अन चार हुआ हैं उस सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या होवे ॥ हे भदन्त काय क्रिया कायसे होनेवाली मावन क्रिया काय क्रिया अधिक क्रिया-पर्माप आगमनक आधार और जीव और अजीवमें होन क्रिया प्राद्वेषिकी क्राधक आवेशमें हुइ प्राद्वेषिक क्रिया परिता निका दूसरों को दुख उत्पन्न करने वाली परतापनिया क्रि प्राणातिपातिका इन्द्रिय मन वचन आयु उच्छ्वास निश्वास प्राणो का वियोग करन वालोप्राणातिपातिका क्रिया ।

पडिक्कमामि भन्ते ! एसके भावे अणाचारे, वेसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाऐसु, चउसु सण्णासु, पचसु महव्वएसु, पचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु णवसु बम्भचेरगुत्तीसु, वसविहेसु समणधम्मेसु एयारसविहेसु उवासय पडमासु बारहविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु चउदस विहसु भूदगामेसु, पण्णारसवि-हेसु पमायठाणेसु, सोलसविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु अमपराएसु उणवीसाए णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्वीसाए

सवलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झा-
णेसु, चउवीसाए अरहतेसु, पणवीसाए भावणासु,
पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्ता-
वीसाए अणगारगुणेसु, अठ्ठावीसाए आयारकप्पेसु,
एउणतीसाए पावसुत्तपसगेसु, तीसाए मोहणीठाणेसु,
एक्तीसाए कम्मविवाएसु बत्तीसाए जिणोवएसेसु
तेत्तीसाए अच्चासणदाए, सवेवेण जीवाण अच्चासण-
दाए अजीवाण अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासण-
दाऐ, दसणस्स अच्चासणदाऐ, चरित्तस्स अच्चासण-
दाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, त सव्व पुव्व दुच्चरिय
गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुपण्ण इत्थ त पडिक्कमामि
अणागय पच्चक्खामि, अगरहिय गरहामि, अणिदिय
णिदामि, अणालोचिय आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठे मि
विराहण पडिक्कमामि इत्थ मे जो कोई (देवसिओ)
राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ९

हे भगवन् ! एक अनाचार परिणाम ने रागद्वेषपरिणाम, तीन गुप्ति, तीनदड तान गारव चारकषाय, चारसज्ञा पांच महाव्रत पाच समिति, छह जीवनिकाय छह आवश्यक सात भय आठ मद नव ब्रह्मचयगुप्ति, दशप्रकार श्रमणधर्म ग्यारहप्रकार उपासक

प्रतिमा बारह प्रकार भिक्षु प्रतिमा तेरह प्रकार क्रियास्थान चौदह प्रकार भूतग्राम पन्द्रह प्रमादस्थान सोलहप्रकार प्रवचन सत्रह प्रकार असंयम अठारह प्रकार, असंपराय उन्नीस प्रकार, नाथाध्ययन बीस असमाधिस्थान इक्कीस सबलक्रिया बाईस परीषह तेईस सूत्रकृताध्ययन चौबीस अर्हन्त पच्चीस भावना पच्चीस क्रियास्थान छब्बीस पृथिवी सत्ताइस अनगारगुण, अट्ठाइस आचारकल्प उनतीस पापसूत्र प्रसंग, तीस मोहनीयस्थान, इकतीस कर्म विपाक, बत्तीस जिनोपदेश, तेतीस आसादना संक्षेपसे जीवों की अत्यासादना अजीवों की अत्यासादना ज्ञान की अत्यासादना दर्शन की अत्यासादना वीर्य की अत्यासादना इन सब में जो कुछ मन वचन और काय से भूत काल में दुष्ट चेष्टा हुई अर्थात् जो पालने योग्य हैं उनका पालन नहीं किया जो पालने योग्य नहीं थे उनका पालन किया उस सब दुश्चरित्र का पर साक्षी से हा ! मैंने दुष्ट कार्य किया इत्यादि पश्चात्ताप पूर्वक गर्हा करता हूँ, प्रत्युत्पन्न दुश्चरित्र को प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूं भावी दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ अविवेक से मैंने जो पहले दुश्चरित्र की गर्हा नहीं की अब उसकी गर्हा करता हूं जिसकी आत्मसाक्षी से निन्दा नहीं की उसकी निन्दा करता हूं जिसकी पहले आलोचना नहीं की उसकी अब आलोचना करता हूं आराधना का (रत्नत्रय का) अनुष्ठान करता हूँ रत्नत्रय की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ इनमें जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अनाचार हुआ है उस अतिचार आदि सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या हों इस प्रकार अनुष्ठान योग्य अर्थों य इनके सब में लगे दोषों का प्रतिक्रमण निराकरण करता हूँ ॥६॥

इच्छामि भंते ! इम णिग्गंथ पवयण अणुत्तर केवलिय पडिपुण्ण णेगाइय सामाइय ससुद्ध सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण सिद्धिमग्ग सेढिमग्ग खंतिमग्ग मुत्तिमग्ग पमुत्तिमग्ग मोक्खमग्ग पमोक्खमग्ग णिज्जाणमग्ग णिव्वाणमग्ग सव्वदुक्खपरिहाणिमग्ग सुचरियपरिणिव्वाणमग्ग अवित्तह अविसतिपवयण उत्तम त सद्दहामि त पत्तियामि त रोचेमि त फासेमि इदोत्तर अण्ण णत्थि ण भूद ण भविस्सदि णाणेण वा दसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण या इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चन्ति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंत करेन्ति पडिवियाणंति समणोमि सजदोम्मि उवरदोमि उवसन्तोमि उवहिणियडिमाणमायमोसमिच्छाणाण-मिच्छदसणमिच्छचरित्त च पडिविरदोमि, सम्मणाण सम्मदसणसम्मचरित्त च रोचेमि ज जिणवरेहिं पण्णत्त, इत्थ मे जो कोई (देवसिओ) राईयो अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ १० ॥

हे भगवान् ! इस निर्ग्रन्थ लिंग की चाहना करता हूँ। यह बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह से रहित मोक्ष की प्राप्ति का कारण निर्ग्रन्थ लिंग आगम में भावना मार्ग है इस रूप से प्रतिपादन किया गया है, अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रन्थ लिंग

स भिन्न दूसरा और कोई उत्कृष्ट मोक्ष का मार्ग नहीं है, केवली सम्बन्धी है, परिपूर्ण है, नैकायिक है, सामायिक रूप है, संशुद्ध है शल्य घट्टक जीवों के शल्य का घातक है सिद्धि का मार्ग है, श्रेणीका मार्ग है, शान्ति का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, प्रकृष्ट मुक्ति का मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है, प्रकृष्ट मोक्ष का मार्ग है, नियति का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है, सब दु खों के परिहानि का मार्ग है, निरतिचार शोभन चारित्र के धारकों के परिनिर्वाण का मार्ग है, अवितथ है प्रवचन स्वरूप है, उत्तम है इस प्रकार का निर्ग्रन्थ लिंग उसका मोक्षार्थी आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् उसे स्वीकार करते हैं मैं उसका श्रद्धान करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ स्पर्श करता हूँ, इस निर्ग्रन्थ लिंग से उत्कृष्ट लिंग न वर्तमान काल में है न अतीत काल में था और न भविष्यत काल में होगा। ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये इसी लिंग में संभवते हैं इसलिए इससे उत्कृष्ट और कोई अन्य लिंग नहीं है, उत्कृष्ट सर्वज्ञ प्रणीत आगम द्वारा प्रतिपादित है इस लिए भी यह निर्ग्रंथ लिंग उत्कृष्ट है। इस निर्ग्रंथलिंग से मोक्षार्थी जीव अपनी आत्मा का स्वरूप प्राप्त कर और ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं, जीवादि वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप जानते हैं, सब कर्मों से विमुक्त होते हैं, अनन्त सुखों का स्पृष्ट होते हैं, शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक दु खों का विनाश करते हैं सब दु खों का अन्त सब तरह से विशेष रूप से जानते हैं इसे ग्रहण कर मैं श्रमण-मुनि होता हूँ, संयत होता हूँ, विषयों से व्यावृत्त होता हूँ, राग और द्वेष के उपशान्त रहित होता हूँ, उपधि विकृति मान माया मृषा मिथ्या

ज्ञान मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र, प्रति विरक्त होता हूँ, जिनेन्द्र द्वारा प्रज्ञप्त सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्र में रुचि करता हूँ इसमें जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अनाचार मेरे लगा है उस अतिचार अनाचार सम्बन्धी दुष्कृत मेरे मिथ्या होवे ॥ १० ॥

पडिक्कमामि भन्ते ! सवस्स सव्वकालियाऐ इरिया समिदीऐ भाससमिदीऐ ऐसणासमिदीऐ आदाणनिक्खेवणसमिदीऐ उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणवियडिपइट्ठावणिसमिदीऐ मणगुत्तीऐ वचिगुत्तीऐ कायगुत्तीऐ पाणादिवादादो वेरमणऐ मुसावादादो वेरमणाऐ, अदिण्णदाणादो वेरमणाऐ, मेहुणादो वेरमणाऐ, परिग्गहादो वेरमणाऐ, राईभोयणादो वेरमणाऐ, सव्वविराहणाऐ, सव्वधम्मअइक्कमणदाऐ सव्वमिच्छाचरियाऐ इत्थ मे जो कोई (देवसिओ) राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! दैवसिक (रात्रिक) अतिचार की सार्वकालिक विशुद्धि के निमित्त प्रतिक्रमण करता हूँ। उन्हीं सार्वकालिक व्रतों को बताते हैं। ईर्या समिति, भाषा समिति एषणा समिति आदान-निक्षेपण समिति, उच्चार—प्रस्रवण-खेल-सिंहाणक विकृति प्रतिष्ठापन समिति, मनोगुप्ति वचनगुप्ति, कायगुप्ति, प्राणों के व्यतिपात से विरमण, मृषावादसे विरमण, अदत्ता

दान से विरमण, मैथुन से विरमण, परिग्रह से विरमण, रात्रि भोजन से विरमण, सब एकेन्द्रियादि जीवों की विराधना, यथा काल आवश्यककरणादि सब धर्मों का अतिक्रमणता सब मिथ्या चार इनमें मेरे जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अनाचार लगा है उस सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे इस प्रकार प्रतिक्रमण करता हूँ ॥ ११ ॥

इच्छामि भन्ते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ दुस्समिणीओ । णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं विराहणाए अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अण्णहा उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जम्भाइएण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं असमाहिपत्तेहिं आयरेहिं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

हे भगवन ! वीरभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करना चाहता हूं उसमें मेरे जो कोई दैवसिक (रात्रिक) अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग दुश्चरित्र लक्षण कायिक दुर्भाषित स्वरूप वाचिक, दुश्चिन्तित-दुष्परिणामिक स्वभाव मानसिक और दुःस्वप्निक दोष हुए तथा ज्ञान में, दर्शन में चारित्र में सूत्रमें, सामायिक में, पांच महाव्रत पांचसमिति तीनगुप्ति छह आवश्यक और छह आवश्यक इनकी विराधना में, आठ प्रकार कर्म की निर्जरा में जो दोष लगे हैं अन्य प्रकार से भी दोष लगे हैं उन सबके विनाशार्थ कायोत्सर्ग करता हूँ। उसी अन्य प्रकार अन्य दोषको दिखाते हैं-उच्छ्वास निःश्वास, उन्मेष निमेष, खास, छींक, जंभाई, सूक्ष्म अंग चलाचल, दृष्टि चलाचल इन सब अन्यप्रकार असमाधिप्राप्त व्यापारों से जो दोष लगे हैं उनके विनाशार्थ जब तक उन दशा में और मध्यदेशमें कम घातियों का घात करने वाले भगवान परमपरमेष्ठी का एकाग्र विशुद्ध मनसे पर्युपासन करता हूं तब तक पाप कर्मोपार्जक दुश्चरित कायको व्युत्सर्जन करता हूँ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं । २ ।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

व्रत समिति, इन्द्रिय निरोध, लोच, आवश्यक, अचेलकत्व स्नान त्याग क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थिति भोजन, और एक

भक्त ये श्रमणों के जिन द्र द्वारा वहे गये मूलगुण हैं मे इनमें प्रमाद वश लग अतिचारा से निवृत्त होता हू । मेरे पुन छेदो स्थापना होवे ॥

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थ रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमणक्रियाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेत निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं ।

अब मे सब अतिचारों की विशुद्धि के निमित्त दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रिया में पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मों के क्षयार्थ भावपूजा-वन्दनास्तव-समेत निष्ठितकरण और भक्तिसम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हू

इति प्रति ज्ञाप्य

(ऐसा प्रतिज्ञापन करके)

दिवसे १०८ रात्रि प्रति क्रमणे ५४ उच्छ्वासपु णमो अरहंताणं इत्यादि दडक पठित्वा कायोत्सर्ग कुर्यात् पश्चात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशतिस्तव पठेत्

दिनमें १०८ और रातमे ५४ उच्छ्वासो में णमो अरहंताण इत्यादि सामायिक दंडक पढ कर कायोत्सर्ग करे पश्चात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढे। फिर उल्लिखित निष्ठितकरण और भक्ति पढे।

वीर भक्ति[1]

य सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।१।

जो सम्पूर्ण चर अचर द्रव्यों को उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी भूत, भावी तथा वर्तमान सब पर्यायों को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषों को लिये हुए युगपत्काल क्रमसे रहित एक साथ प्रतिक्षण जानते हैं इस लिए वह सर्वज्ञ कहते हैं उन सर्वज्ञ महान गुणोत्कृष्ट, अन्तिम तीर्थंकर वीर जिनेश्वर को नमस्कार हो

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो,
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्तिधृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि

वीर जिनेश्वर सब सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों द्वारा पूजित हैं। वीर जिनेश्वर को गणधरादि बुधजन संसार समुद्र से पार होने के लिए आश्रय करते हैं, वीर जिनेश्वरने अपने और पर के कर्मों के समूह को विनष्ट किया है। वीर भगवान को भक्ति से सिर झुका कर नमस्कार करता हूँ वीर ! जिनसे भव सागर से तारने वाला यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुआ है। वीर जिनेश्वर का बाह्य और अभ्यन्तर तप भारी दुष्कर था जो औरों में नहीं पाया जाता था वीर जिन में बाह्याभ्यन्तर लक्ष्मी, शरीर की ज्योति, कान्ति कीर्ति, धृति ये सब गुण विद्यमान हैं। इस लिए हे वीर ! आप में कल्याण है ॥ २ ॥

ये वीरपादौ प्रणमति नित्य,
ध्यानस्थिता सयमयोगयुक्ता ।
ते वीतशोका हि भवति लोके,
समारदुर्ग विषम तरति । ३ ।

ध्यान में एकाग्रता को प्राप्त हुए, सयम से उपलक्षित योग से युक्त होते हुए जो भव्य पुरुष वीर भगवान के चरणों को नित्य प्रणाम करते हैं वे लोक में शोक से विमुक्त होते हैं और विषम ससार रूपी अटवी के पार पहुँच जाते हैं ॥ ३॥

व्रतसमुदयमूल सयमस्कधबधो,
यमनियमपयोभिर्वर्धित शीलशाख ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो,
गुणकुसुमसुगधि सत्तपश्चित्रपत्र । ४ ।
शिवसुखफलदायी यो दयाछाययौद्ध ,
शुभजनपथिकाना खेदनोदे समर्थ ।
दुरितरविजताप प्रापयन्नतभाव,
स भवविभवहान्यनोऽस्तु चारित्र वृक्ष' ५

जिसका व्रतोंका समुदाय मूल-जड है सयम स्कन्धबन्ध है जो यम नियम रूप जल से वृद्धिगत है अठारह हजार शील जिसकी शाखाए हैं, जिसमें समितिया रूप कलिकाओं भार हैं गुप्तियाँ प्रवाल (पल्लव) हैं, चौरासी लाख गुण रूप पुष्पो की सुगन्धि

है सम्यक्त्व विचित्र पत्र हैं जो मोक्ष रूपी फलको देनेवाला है, यश रूप छाया से प्रशस्त है भव्यजन रूप पथिकों के संताप को दूर करने में समर्थ है ऐसा पाप रूप सूर्यके संताप का अन्त नाश करने वाला। यह चारित्र रूप वृक्ष हमारे संसार में जो जन्मादि नाना भव हैं उनके विनाश के लिए होवे॥ ४-५॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ।६।

सब तीर्थंकरों ने स्वयं चारित्र का अनुष्ठान किया है और सब शिष्यों के लिए जैसा है वैसा स्पष्ट कहा है। अतः सब कर्मों के क्षय के साधक पंचम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के लिए सामायिकादि पांच भेदों में समन्वित चारित्र को मैं प्रणाम करता हूं।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ७

धर्म रूप चारित्र स्वर्ग और अपवर्ग सम्बन्धी सब सुखों का आकर अर्थात् उत्पत्ति स्थान है सब जीवों का हितकर करनेवाला है चारित्र रूप इस धर्मको सभी विवेकशाली नाथ ? आश्रित करते हैं। धर्म से ही मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। इस धर्म के लिए नमस्कार हो उस के सिवा और कोई संसारी जीवोंका उपकारक मित्र नहीं है। धर्मका मूल—कारण दया है। इसप्रकार के धर्म में मैं प्रतिदिन चित्त लगाता हूं हे धर्म तू मेरा पालन कर॥ ७॥

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ ८ ॥

यह चारित्र रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है अर्थात् मल का गालने वाला और सुख का देनेवाला है, धर्म ही। वहां अहिंसा संयम और तप भी परमोत्कृष्ट मंगल है क्योंकि जिसका मन धर्म में सदा तल्लीन है उस को देव भी नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥

अंचलिका

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-तव-वीरियाचारेसु जमणियम-संजमसीलमूलुत्तरगुणेसु सव्वमईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्जलोगअज्झवसायठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिंदियकसायगारवकिरियासु मण-वयणकायकरणदुप्पणिहाणाणि परिचिंतियाणि किण्ह-णीलकाउलेस्साओ विकहापलिकुंचिएण उम्मग्गहस्स-रदिअरदिसोयभयदुगुंछवेयणविज्जंभजंभाइआणि अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि अणि-हुदकरचरणमणवयणकायकरणेण अक्खित्तबहुलपरा-यणेण अपडिपुण्णेण वा सरक्खरावयपरिसंघायप-डिवत्तिएण वा अच्छाकारिदं मिच्छा मेलिदं आमेलिदं वा

मेनिर्द वा अण्णहादिण्ण अण्णहार्ाडिन्ह्द आवासए सु परिहीणदाए वदा वा क रिदा ना वोरतो वा समणु-मणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

अर्थ—

हे भगवान प्रतिक्रमण सम्बन्धी अतिचारों की आलोचना करना चाहता हूँ सम्यक्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र तप और वीर्य इन पाँच आचारों में यम नियम, सयम, शील मूलगुण और उत्तर गुणों में सब अतिचार और सावद्य योग हुआ है उसमें विरत होता हूँ।

असत्यय लाराध्यवसायोवान अप्रशस्तयोग मज्ञा इन्द्रिय कपाय गारव क्रियाओंमें मन वचन काय से जो दुष्प्रणिधान चार चिंतित किये छ्राणनाल कपाल लाया निकृष्ट वमन हास्य रतिअरति शोक भय जुगुप्सा विनू भ उमाड आर्त रौद्र सक्लेश परिणाम परिणमित किये अनिभृत घर करण मन वचन कायका प्रवृत्ति करने से इन्द्रियों के विषयों में अति प्रवृत्तिकरने स अपरिपूर्णता में स्वर व्यञ्जन पद और परि मयात क वालन में जो अयथा प्रवृत्ति की मिथ्या मलित आम लत किया अन्यथा दिया, अन्यथा स्वीकार किया, आवश्यकों में हानता स्वय की, दूसरों से कराई, किये हुए की अनुमोदना की उसमें हुआ दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।

खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।

एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो ह ।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं ।

पाँच महाव्रत पांच समिति,पाँच इन्द्रियरोध, लोच, छ आवश्यक, अचेलकत्व (नग्नता) स्नान त्याग, क्षितिशयन अदन्त धावन, खडे होकर आहार लेना दिनमें एक बार आहार लेना । ये अट्ठाईस मूल गुण श्रमणों के जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं, इनमें प्रमाद से लगे हुए दोष मिथ्या हों । छेदोपस्थापना मेरे हो ।

चतुर्विंशतितीर्थंकर–भक्ति

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानु क्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चतु विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

इति प्रतिज्ञाप्य

अथ मैं सब अतीचारों की विशुद्धि के अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया में कृत दोषों के निराकरण के लिए पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षयनिमित्त भावपूजा व स्तोत्र सहित चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ

इस प्रकार प्रतिज्ञापन कर

णमो अरहंताणं इत्यादि (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्) (थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्)

णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर सत्ताइस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे पश्चात् थोस्सामीत्यादि चतुर्विंशतिस्तव पढ़े।

अनन्तर निम्न भक्ति पढ़े

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे।
सव्वे सगणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ १ ॥

मैं वृषभनाथ को आदि लेकर वीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थकरों की वन्दना करता हूँ। तथा ऋषि यति मुनि और अनागार इन चार गणों सहित सब गणधरों को और सिद्धों को मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गता,
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोधिकाः।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता–
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्

जो लोक में एक हजार आठ लक्षण के धारण करने वाले हैं, ज्ञेय (पदार्थ) रूपी समुद्र के पारगत हैं जो भवजाल के कारण मिथ्यात्वादि का सम्यक् मथन करने वाले हैं, चन्द्रमा और सूर्य के तेजसे भी अधिक तेजवाले हैं

जो साधुओं इन्द्रों देवों और अप्सराओं के समूहों के सैकड़ों द्वारा उच्चारण की गई स्तुति से और उनके वचन रूप पुष्पों से पूजित हैं उन वृषभादि वीरान्त तीर्थंकरों की भक्ति से नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

नाभेय देवपूज्य जिनवरमजित सर्वलोकप्रदीप,
सर्वज्ञ संभवाख्य मुनिगणवृषभ नंदन देवदेव ।
कर्मारिघ्न सुबुद्धि वरकमलनिभ पद्मपुष्पाभिगंध
क्षांत दांत सुपार्श्व सकलशशिनिभ चन्द्रनामानमीडे ॥३॥

देवों द्वारा पूज्य दशजिन गणधर आदि से उत्कृष्ट त्रैलोक्य के प्रकाशक सर्वज्ञ श्रीनाभिकुलकर के अपत्य वृषभनाथ को, उक्त विशेषणों से विशिष्ट अजित नाथ को मुनिगण में श्रेष्ठ संभवनाथ को देवों के देव अभिनन्दन जिनको कर्मशत्रुओं के विनाशक सुमतिप्रभु को पद्म पुष्प के समान सुगंधित और उत्कृष्ट कमल के समान प्रभावाले पद्मप्रभ को, परमोपशान्त निर्जितेन्द्रिय सुपार्श्व जिनको और पूर्ण चन्द्रमा के समान (सफेद वर्ण) चन्द्रप्रभ स्वामी को मैं पूजता हूं ॥ ३ ॥

विख्यात पुष्पदन्त भवभयमथन शीतल लोकनाथ,
श्रेयांस शीलकोश प्रवरनरगुरु वासुपूज्य सुपूज्य ।
मुक्त दान्तेन्द्रियाश्व विमलमृषिपति सिंहसैन्य मुनीन्द्र
धर्म सद्धर्मकेतु शमदमनिलय स्तौमि शान्ति शरण्यम् ४

चार गुणों में विख्यात भगवत्पुष्पदन्त को, संसार के भय के मथन करने वाले तीन लोक के अधिपति शीतल नाथ को,

शीतल के स्वामी श्रेयांस नाथ की अमर नर और गणधर चक्र-वर्ती आदि उनके गुरु सुपूज्य वासुपूज्य की घाति शत्रुओं से मुक्त और इन्द्रियों रूप अश्वों को वश में करने वाले ऋषिपति विमल प्रभु की श्री सिंहसेन नृपति के पुत्र अनन्तनाथ तीर्थंकर की, सभी चार धर्म के चिन्ह धर्मनाथ की और शम और दम (इन्द्रियजय) के निलय स्वर्ग मोक्षादि जीवों के शरण स्वरूप शान्तिनाथ की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम्
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ५

सिद्धालय में अवस्थित और गणधरादि ऋषियों के स्वामी कुन्थु नाथ की, भोगों के समूह से विमुख अर जिन की, विख्यात गोत्र तथा विद्याधरों द्वारा नमस्कृत मल्लिनाथ की, सौख्यराशि सुव्रतनाथ की इन्द्रों द्वारा पूज्य नमिनाथ की, हरि कुल के तिलक और भवनाशक अरिष्टनेमि की, नाग कुमारों और इन्द्रों द्वारा वन्दनीय पार्श्वनाथ की तथा अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान जिनेश की मैं भक्ति पूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ५ ॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठम-

हापाडिहेरसहियाण चउतीसातिसयविसेससजुत्ताण बत्तीसदविदमणिमउडमत्थयमहिदाण बलदेव वासुदेव-चक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाण थुइसहस्सणि-याण उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाण णिच्च काल अच्चेमि पूजेमि वन्दामि णमसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिण गुणसपत्ती होउ मज्झ ॥

हे भगवन् ! चतुर्विंशतितीर्थकर सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैंने किया, उसकी आलोचना करना चाहता हूं। जो पांच महाकल्याणों से सम्पन्न हैं, आठ महाप्रातिहार्यों से सहित हैं, चौतीस अतिशय विशेषों से सयुक्त हैं देवेन्द्रों के मणियों से जटित मुकुट से शोभित मस्तकों से पूजित हैं, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि और अनगारों से अवगूढ (वेष्टित) हैं, लाखों स्तुतियों के निलय हैं उन वृषभादि वीरान्त मागलिक महापुरुषों की नित्य काल अर्चा करता हूँ पूजा करता हूं वन्दना करता हूँ और नमस्कार करता हूं। मेरे दुःखों का क्षय हो कर्मों का क्षय हो रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो समाधि से मरण हो और जिनेन्द्र के केवलादि गुणों की सप्राप्ति हो। ॥१

१–उक्त सब विशेषण एक दो को छोड़कर सभी तीर्थंकरों में पाये जाते हैं।

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमणक्रियायां श्रीसिद्धभक्तिप्रतिक्रमणभक्ति-निष्ठित करणवीरभक्ति-चतुर्विंशतितीर्थकरभक्तीः कृत्वा तद्धीनादिकदोषविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्

अब मैं सब अतिचारों की विशुद्धि के लिए दैवसिक प्रतिक्रमणक्रिया में श्री सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरणवीर भक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करके उनके हीनादिदोषों की विशुद्धि के लिए आत्मपवित्रीकरणार्थ समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ-

इति विज्ञाप्य

णमो अरहंताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्

णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर कायोत्सर्ग करे, पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति-स्तव पढ़े

समाधिभक्ति

अथेष्टप्रार्थना-प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथ इष्ट प्रार्थना-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति संगति सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

मेरे शास्त्रों का अभ्यास हो, जिनेन्द्र के चरणों को नमस्कार हो, आर्य (सुचरित) पुरुषों की सदा संगति हो, सदाचार परायण पुरुषों के गुणगण की कथा हो, पर के दोषों के कहने में मौन हो, सबके लिए हित मित वचन हो और अपने आत्मस्वरूप में भावना हो, मेरे मोक्ष की प्राप्ति पर्यंत ये सब जन्म जन्म में प्राप्त हों ॥ १ ॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ।

हे जिनेन्द्र ! जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति हो तब तक आपके चरण मेरे हृदय में रहें और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे ॥ २ ॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जो मए भणियं
तं खमउ णाणदेव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।३।

हे ज्ञान रूप देव ! अक्षर पद और अर्थ से तथा मात्रा से हीन मैंने जो कहा हो तो उसको आप क्षमा करें और मेरे दुःखों का क्षय करें ॥ ३ ॥

आलोचना—

इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयस्वपरमप्पज्झाणलक्खणसमा-हिभत्तिए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमं-सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

हे भगवन् ! मैंने समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। उसकी अब मैं आलोचना करना चाहता हूं। रत्नत्रय स्वरूप और परमात्मा का ध्यान लक्षण समाधि का सब काल अर्चन करता हूं पूजन करता हूँ वन्दना करता हूं और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो कर्मों का क्षय हो बोधि का लाभ हो, सुगति गमन हो और जिनेन्द्र गुणों की सम्यक् प्राप्ति हो।

इति दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण समाप्त

पाक्षिकादिप्रतिक्रमण-विधि

(शिष्यसधर्माणः पाक्षिकादिप्रतिक्रमे लघ्वीभिः सिद्धश्रुताचार्यभक्तिभिराचार्यं वन्देरन् ।)

इस प्रतिक्रमण के प्रारंभ में शिष्य मुनि और साधर्मीमुनि मिल कर सिद्ध, श्रुत और आचार्य की लघुभक्ति पढ़कर आचार्य की वन्दना करें। वह इस प्रकार करें—

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनसिद्धभक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम्—

हे भगवन्! नमस्कार हो, आचार्य वन्दना में प्रारंभिक प्रतिष्ठापन सिद्ध भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ—

[ऐसा प्रतिज्ञा कर ६ जाप्य दवें]

सम्मत्तणाणदसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १ ॥

सिद्धों के सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण होते हैं ॥ १ ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य । णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ २ ॥

तपसिद्ध नयसिद्ध संयमसिद्ध चरित्रसिद्ध, ज्ञानमें सिद्ध और दर्शन में सिद्ध इन सब सिद्धों को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनश्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्—

हे भगवन्! नमस्कार हो, आचार्यवंदना में प्रतिष्ठापन श्रुतभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ—

[ऐसी प्रतिज्ञा कर ६ जाप्य दवें]

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्य-धिकानि चैव । पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंच

पद नमामि ॥ १ ॥ अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं। पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥२॥

एक सौ बारह करोड़, तिरासी लाख अट्ठावन हजार और पांच पद प्रमाण इस श्रुत ज्ञान को मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

अर्हन्त देव द्वारा अर्थरूप से कथित और गणधर देव द्वारा ग्रन्थ रूप से ग्रथित श्रुतज्ञान रूप महासागर को भक्ति युक्त हुआ सिर झुका कर प्रणाम करता हूं ॥२॥

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनाचार्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

हे भगवन्! नमस्कार हो। मैं आचार्यवन्दना में प्रतिष्ठापन आचार्य-भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूं—

यहाँ प्रतिज्ञा कर ९ जाप्य दें

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥१॥

जो श्रुतसमुद्र के पारगामी हैं, स्वमत और परमत के विभावन में पटुमति हैं, सुचरित और तप के निधान हैं और गुणों में महान् हैं उन गुरुओं को नमस्कार हो ॥ १ ॥

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे ॥२॥

जो छत्तीस गुणों से पूर्ण हैं, पांच प्रकार के आचार के पालन और प्रचार वाले हैं, शिष्यों का अनुग्रह करने में कुशल

हैं उन धर्माचार्यों को मैं सदा वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

गुरुभक्तिसंयमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावंति ॥३॥

गुरुभक्ति करने से शिष्य घोर संसार सागर से तिर जाते हैं आठ कर्मों का छेद देते हैं और जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ३ ॥

ये नित्यं व्रतमन्त्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोमाकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥४॥

जो प्रति दिन व्रत मंत्र और होम में निरत हैं, ध्यान रूप अग्नि में हवन करने वाले हैं आवश्यकादि षट् क्रियाओं में लीन हैं तप रूप धन ही जिनका धन है जो साधुओं की क्रियाओं का साधन करने वाले हैं अठारह हजार शील ही जिनके पास ओढ़ने का वस्त्र है चौरासी लाख गुण ही जिनके पास शस्त्र हैं, चन्द्र और सूर्य के तेज से भी जिनका तेज अधिक है, मोक्षद्वार के कपाट के पाटन-उद्घाटन करने में जो महा भट हैं योद्धा हैं, ऐसे साधु मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ५ ॥

ज्ञान और दर्शन ...

समान गम्भीर है और आत्मा में स्पष्टता देनेवाला सम गुरु आचार्य हमारा नित्य रक्षा करें ॥ ५ ॥

(इसके बाद नमस्कारपूर्वक "समता सर्वभूतेषु" इत्यादि पाठिका पढ़ना शिष्यसंघमग्रयुक्त "सिद्धानुद्धूतकर्म" इत्यादि गुर्वी सिद्धभक्ति ... यह ज्ञान ... चारित्र भक्ति ... सहित ... इत्याद्य ... शिष्यों का सर्वमण ... माधारण क्रिया ।)

इसके अनन्तर ... पूर्वक ... इत्यादि श्लोक पढ़कर शिष्यमुनि और साधर्मी ... सिद्धानुद्धूतकर्म इत्यादि अचलिका सहित प्रसिद्ध ... गुरु आलोचना सहित ... इत्यादि चारित्र ... ... । यह यह मूरि शिष्य और ... सामाय क्रिया है । वह इस प्रकार है—

नम श्री वर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।

सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते

जिनका आत्मा ... पाप-मल ... है ... श्रीवर्धमान अन्तिम तीर्थकर को ... कि ... अलोक सहित तीनों लोकों को ... ... करता है ।

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना ।

आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं ...

सब प्राणियों में समताभाव ... संयम में शुभ भावना होना और आर्त रौद्र ... ... होना सामायिक माना गया है ॥ ... ॥

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं ... प्रतिक्र-

क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण ... ...

वन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं ।

सब अतिचारों (दोषों) की विशुद्धि के अर्थ पाक्षिक प्रतिक्रमण में पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिए भाव पूजा, वन्दना और स्तव समेत सिद्ध भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूं—ऐसी प्रतिज्ञा कर

(णमो अरहंताणं इत्यादिदण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं) कृत्वा थोस्सामि इत्यादिकं नियाय सिद्धानुद्धूतकर्म इत्यादि सिद्धभक्तिं सांचलिकां पठेत्

णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करे फिर 'थोस्सामि' इत्यादि स्तव पढ़ कर अंचलिका युक्त सिद्धानुद्धतकर्म इत्यादि निम्न लिखित सिद्धभक्ति पढ़ें—

सिद्ध भक्ति

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान् साधितात्मस्वभावान्
वन्दे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः ।।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात्
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः

उन उपमा रहित अनन्तगुण रूपी सिद्धभक्ति रस्सी के आकर्षण से सन्तुष्ट हुआ मैं जिन्होंने ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के समुदाय को नष्ट कर दिया है और अनन्त ज्ञानादि लक्षण अपने स्वरूप को साध कर लिया है उन समस्त कर्म-मल से अस्पृष्ट सिद्धों को अपनी आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूं। आत्मा के अनन्त ज्ञानादि स्वरूप की उपलब्धि का नाम सिद्धि है वह प्रकृष्ट अनन्त ज्ञानादि गुणों के समुदाय को उच्छेद कर देनेवाले ज्ञानावरण आदि दोषों के निरास से

प्राप्त होता है। जिस तरह कि योग्य धमनी आदि कारणों की योजना से लोकमें पाषाण से किट्ट कालिमा आदि मल के जुदा हो जाने से स्वर्णके सद्भाव की प्राप्ति होती है। १।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिन युक्ते-रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्ष-भागी।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥

न तो आत्मा का अभाव सिद्धि इष्ट है और नहि आत्मा के ज्ञान-सुख आदि गुणों का विनाश का नाना सिद्धि इष्ट है। क्योंकि ये दोनों ही बातें तपश्चरण से घटित नहीं होती हैं। कौन ऐसा प्रेक्षापूर्वकारी है जो आत्मा के अभाव और गुणों के विनाश के लिए व्रत तपश्चरण का अनुष्ठान करेगा क्योंकि व्रत तपश्चरण आदि का अनुष्ठान तो आत्मा की दुर्गति से रक्षा करने के लिए और उसके गुणों का उत्कर्षण करने के लिए किया जाता है। आत्मा है। वह अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ है और वही अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल भोगता है तथा वही उन कर्मों के क्षय से मोक्षका भागी होता है। वह आत्मा ज्ञाता है द्रष्टा है, न जड़रूप है और न चैतन्यमात्र स्वरूप वाला है। अपने द्वारा उपात्त देह के बराबर है न कि विश्वव्यापी। प्रदीप की तरह आत्म प्रदेशों का संकोच और विस्तार धर्म वाला है तथा ध्रौव्य उत्पाद और व्यय रूप है।

और अपने ज्ञानादि गुणों से युक्त हैं। इस प्रकार से अर्थात् अन्यथा स्वगुणों सत्त्व के अभाव प्रकार से स्वरूप की उपलब्धि रूप साध्य की सिद्धि नहीं है । २ ।

स एव तथाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
सम्पद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः ॥
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ॥

दर्शनमोहादि के क्षयोपशमादि आभ्यन्तर कारणों से और गुरूपदेश पुस्तकादि बाह्य कारणों से निर्मल सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी सम्पत्ति उत्पन्न होती है। यह सम्पत्ति कर्मों का नाश करने के लिए अद्वितीय शस्त्र है। उस शस्त्र के प्रहार से घाति कर्म रूप दुरितता नष्ट होती है उस दुरितता के नष्ट हो जाने से अचिन्त्य माहात्म्य युक्त केवल ज्ञान केवल दर्शन प्रवरसुख, महावीर्य सम्यक्त्व आदि अन्यजनासम्भवी लब्धियां तथा भामण्डल चमर, छत्र त्रय आदि ध्वजोपादान धर्म प्रकट होते हैं। उनसे वह आत्मा प्रकाशमान होता हुआ स्वयंभू बन जाता है। ३।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं सम्प्रतृप्यन्वितन्वन् ।
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुपमं प्रीणयन्नीशभाव
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः ।

समस्त लोक और अलोक को युगपत् प्रतिक्षण जानता हुआ और देखता हुआ, सम्यक् तृप्ति को प्राप्त हुआ, अनन्त काल को अपनी आत्मामें व्याप्त करता हुआ निविड़ मोहान्धकारको निरवशेष ध्वस्त करता हुआ अमृत के समान हितकारक प्रिय वचनों से सभाको तृप्त करता हुआ सब आर्यों का प्रभुत्व करता हुआ, शरीर की कांति के द्वारा या केवलज्ञान रूप ज्योतिके द्वारा इन्द्रादिकके ज्ञान का और सूर्यचन्द्रमादि के तेज का अभिभव करता हुआ यह आत्मा अपने ही द्वारा अपने में ही अपने स्वरूप को प्रतिक्षण निमग्न करता हुआ स्वयंभू होता है।४।

छिंदन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः ।
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वव्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रे

इसके अनन्तर वह स्वयंभू आत्मा घाति कर्मों से भिन्न निगडके समान बलिष्ठ अवशिष्ट अघाति कर्मों का छेदन करता हुआ अनन्त स्वभाव वाले क्षायिक ज्ञान आदि गुणों से सूक्ष्मत्व, अवगाहन अगुरुलघुत्व आदि क्षायिक गुणों से और उत्तरोत्तर कर्म प्रकृति विशेषों के व्यामोह (नाश) से और विशुद्ध हुआ आत्मा रूप विषय की प्राप्ति से जिसे माहात्म्य प्राप्त हुआ है ऐसे चौरासी लाख गुणान्तर्वर्ती अन्य गुणों से सुशोभित होता हुआ, ऊर्ध्व गमन स्वभाव के कारण एक ही समय में ऊपर पहुँच कर अग्र स्थानमें स्थित हो जाता है।५।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीन ।
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहृते कोऽस्य सौख्यस्य माता ६

जिससे कि वहां पर पहुँच कर यह आत्मा सर्वव्यापी य यह वर्णित प्रमाण अन्य आकार की प्राप्ति का कारण औ कोई नहीं है इसलिए पहले अपने के द्वारा प्राप्त किये गये देह आकार के समान कुछ कम देदीप्यमान आकार का धारक होता है। क्षुधा तृषा, श्वास कास, ज्वर, मरण, जर अनिष्टयोग, प्रमोह, नानातरह की आपत्तियां आदि उग्र दु जिससे उत्पन्न होते हैं ऐसे संसार के नाश हो जाने न इ सिद्धात्मा के इस सौख्य का प्रमाता इयत्ता का अवधारक कौन हो अर्थात् कोई नहीं हो सकता। ६।

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वन्द्वभावम् ॥
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं शाश्वतं सर्वकालं ।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥

सिद्धात्मा के सुख का उपादान कारण उनका आत्मा ही है उससे वह उत्पन्न होता है और किसी से वह उत्पन्न नहीं होता है। वह स्वयं परम अतिशय को प्राप्त है, सब बाधाओं से रहित होता है। आत्मा के सब असंख्यात प्रदेशोंमें व्याप्त होने से विशाल [विस्तीर्ण] होता है। वृद्धि और ह्रास से रहित होता

है, सांसारिक सुख की तरह इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न नहीं होता है। उस सुख का प्रतिद्वन्द्वी दुःख वहां नहीं है इस लिए वह प्रतिद्वन्द्वी से रहित होता है। वह अन्य साता वेदनीय कर्म द्रव्य की और पुष्प माला, वनिता चन्दनादि अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखता है। उपमा रहित होता है। अप्रमित होता है अतएव कभी विनाश को प्राप्त न होकर सर्वकाल रहता है। जिसका माहात्म्य परम प्रकर्ष को प्राप्त है। ऐसा परम सुख उस अग्रधाम में स्थित सिद्ध परमात्मा के होता है।

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या ।
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतङ्कार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद् ।
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

सिद्ध परमात्मा के क्षुधा, तृषाका अभाव है इस लिए उसके नाना रसों से, युक्त अन्न और पान से अपवित्र पदार्थों से स्पर्श न होने से गंध, माला आदि सुगंधित पदार्थों से उनको, निद्रा, ज्वर आदि का उनके अभाव होता है इसलिए कोमल शय्यासे कोई प्रयोजन नहीं होता है। जिस तरह कि प्राणियोंका हरण करने वाली व्याधि से जनित पीड़ा के अभाव में उसको शमन करने वाली औषधि से अथवा अन्धकार के अभावमें सब सम्पूर्ण पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहें तब दीपक से कोई प्रयोजन नहीं होता है ।८।

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि–

यथासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवा ।
भूता भव्या भवन्त सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्ट-
स्तान्सर्वान्नौम्यनन्तान्निजगमिषुरहं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्

ये सिद्ध अनन्त ज्ञानादि गुण रूप संपदा से युक्त हैं, नाना-प्रकार के नैगमादि नय व्यवहारादि नय सामायिकादिक संयम, मत्यादि ज्ञान औपशमिकादि दर्शन तेरह प्रकार चारित्र से कृतकृत्यता को प्राप्त हुए हैं। चारों ओर जिनका यश फैला हुआ है। सब देवों के अधिदेव हैं। जो भूत काल में हो गये हैं, वर्तमान काल में हो रहे हैं और आगामी काल में होंगे। समस्त जगत में जो भव्यजनों द्वारा स्तूयमान हैं उन सब अनन्त सिद्धों को उनके स्वरूप को शीघ्र प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ मैं तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करता हूं।

अंचलिका

इच्छामि भंते सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठ-विहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थ-यम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजम-सिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाणकालत्तय-सिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं

इसका अर्थ पहले दैवसिक प्रतिक्रमण में पृष्ठ ७ पर कहाजाचुका है।

चारित्र भक्ति -

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारांगदान्,
भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुगोत्तमाङ्गान्नतान् ।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा
वंदे पञ्चतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ।

जिनके केयूर हार, अङ्गद बड़े सुन्दर हैं, दैदीप्यमान मुकुटों में जड़ित मणियों की प्रभा के विस्तार से जिनका मस्तक उन्नत है ऐसे तीन भुवन के स्वामी इन्द्रों को जिस आचार के अनुष्ठान से मुनि अपने चरण-कमलों में अतिशय रूपसे सदा नतमस्तक कर लेते हैं उस ज्ञानाचारादि पंचावयव पूज्य आचार को कहता हुआ मैं 'श्रुतज्ञान के अनन्तर' नमस्कार करता हूं । १ ।

अर्थव्यञ्जनतद्द्वयाविकलताकालोपधाप्रश्रया,
स्वाचार्याद्यनपन्हवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ।२।

श्री युक्त जाति और कुल के द्योतक चन्द्र या धर्म तीर्थ के कर्ता भगवान् ने परमार्थ से अर्थ (१) व्यंजन (२) और उभय से [३] परिपूर्ण, सन्ध्यादिक से विविक्त पूर्वाह्णादि काल (४) उपधा (नियम विशेष) (५) विनय (६) पंचा–

धार के उपदेष्टा या प्रणेता अपने आचार्य का अनिह्नव (७) और द्रव्यभाव स्वरूप बहुमान इस प्रकार आठ प्रकार का ज्ञानाचार कहा है उस ज्ञानाचार को मैं अपने मन, वचन और काय से कर्म—मल का प्रक्षालन करने के लिए नमस्कार करता हूँ।

शंकादृष्टि-विमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां,
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं, धर्मोपबृंहक्रियां।
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं,
वन्दे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।३।

शंका, दृष्टिमोह, और कांक्षा की व्यावृत्ति में तत्परता अर्थात् निःशंकित, अमूढदृष्टित्व निःकांक्षित, वात्सल्य, निर्जुगुप्सा, निर्विचिकित्सत्व, उत्तमक्षमादि दशलाक्षणिक धर्म की उपबृंहण क्रिया, शक्ति के अनुसार धर्म की प्रभावना, और हितपथ अर्थात् रत्नत्रयमार्ग से परिभ्रष्ट को पुनः उसी में स्थिर करना यह दर्शन विषयक दर्शनाचार है गणधरादि द्वारा आचरित दर्शनाचार को मैं आदर पूर्वक सिर झुकाता हुआ नमस्कार करता हूँ। ३।

एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः संतापनं तानवम्,
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्,
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं तपः ।४।

स्त्री, पशु पंढ से विवर्जित एकान्त स्थान में सोना और बैठना अर्थात् विविक्तशय्यासन तप, शरीर को सन्ताप देना

अर्थात् काय क्लेश तप, वृत्तिका हेतुभूत संख्या अर्थात् वृत्ति-परिसंख्यान तप, अनशन तप, अवमौदर्य मात्रा अर्थात् अवमौदर्य तप, इन्द्रिय रूपी हस्ती का मद मस्त करनेवाले स्वादु और पुष्ट रसों का त्याग अर्थात् रसपरित्याग तप, इस प्रकार मोक्षगति के उपाय छह प्रकार के बाह्य तप आचार की मैं स्तुति करता हूँ ॥

स्वाध्याय शुभकर्मणश्च्युतवत संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यती।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं,
वन्देऽभ्यन्तरमन्तरंगबलवद्विद्वेषिविध्वंसनम्। ५।

स्वाध्याय, शुभकर्म से च्युत व्यक्तियों को पुनः उसी में स्थापन करना अर्थात् प्रायश्चित्त, ध्यान, रोगी गुरु, जरापीड़ित शरीरयुक्त वृद्ध और बाल यति में वैयावृत्य, कायोत्सर्गसत् क्रिया और विनय इस प्रकार अन्तरंग और बलिष्ठ क्रोधादिशत्रु औंका विध्वंसक छह प्रकार के आभ्यन्तर तप आचार की वन्दना करता हूँ। ५।

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः श्रद्धानमर्हन्मते,
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यते।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं वन्दे सतामर्चितम्। ६,

यथावस्थित वस्तुओं का ज्ञान रूप नेत्र वाले, अर्हन्त के मत में श्रद्धान रखने वाले सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन के धारक मुनि

अपने वीर्य को न छिपाकर जो अत्यन्त आदरके साथ बारह प्रकार के तप में प्रवृत्ति है, उनकी वह प्रवृत्ति जैसे छिद्र रहित हल्की नाव समुद्र से पार कर देती है उस तरह निर्दोष संसार समुद्र के पार को प्राप्त कर देने वाला तपाचार है उस वीर्याचार को मैं वन्दना करता हूँ। जो कि वीर्याचार कर्मोंके उन्मूलन करने में और दुद्धर तप के करने में गणधर, देवादिद्वारा पूज्य ऊर्जित गुण है। ६।

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदया,
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम्॥

काय, मन, और वचन के निमित्त से उत्पन्न तीन प्रशस्त गुप्तियां, ईर्या आदि पाँच समितियां और अहिंसादि पांच व्रत ये सब मिल कर चारित्र है। इस चारित्र से युक्त तेरह प्रकार का चारित्राचार होता है जो परमेष्ठी जिनपति अन्तिम तीर्थकर वीरभगवान् ने पूर्व के तीर्थकरों द्वारा नहीं कहा गया है। पूर्व तीर्थ करों ने सर्वसावद्यविरति लक्षण एक ही चारित्र कहा है। क्यों कि उनके समय के शिष्य न ऋजुमति थे और न जड़-मति। किन्तु वर्धमान तीर्थ कर के समय के शिष्य जड़मति और आदिनाथ के समय के शिष्य ऋजुमति थे इन ऋजुमति और जड़मति शिष्योंके हितार्थ आदि प्रभुने और वीर प्रभुने चारित्र को तेरह भेदों में विभक्त कर प्रतिपादन किया और तीर्थ करों ने तेरह

भेद न कर उसे सर्वसावद्य विरति रूप हा प्रतिपादन किया । इस तरह वीर भगवान के द्वारा उपदिष्ट तेरह प्रकार के चारित्र को हम नमस्कार करते हैं। ७।

आचार सहपचभेदमुदित तीथ पर मगल,
निग्रन्थानपि सच्चारित्रमहतो वद समग्रान्यतीन् ।
आत्माधीनसुखोऽयामनुपमा लक्ष्मीमविध्वंसिनी-
मिच्छ केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्ज्वलाम

जिसकी आत्माधीन सुख से उत्पत्ति है, जो उपमा रहित है, कभी नाश न होनेवाला है, केवल दर्शन और केवल ज्ञान के प्रचुर प्रकाश से उज्ज्वल है ऐसी मोक्ष लक्ष्मी का इच्छा करता हुआ मैं उत्कृष्ट मगलरूप जिससे भव्यजन भवोदधि से तिरते है ऐसे तीर्थरूप ज्ञानादि पाच भेदों से सहित बड़े गये आचार को और सच्चारित्र से महान् समस्त निग्रन्थ यतियों का वन्दना करता हू ॥ ८ ॥

अज्ञानाद्यदवीवृत नियमिनोऽवर्तिष्यह चान्यथा ।
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनव चैनो निराकुर्वति ॥
वृत्ते सप्ततयी निधि सुतपसामृद्धि नयत्यद्भुतम् ।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृत भवतु मे स्व निंदितो निंदित ॥

मैंने अज्ञानवश शास्त्रोक्त नियमों के विरुद्ध मुनियों की प्रवृत्ति कराई है या मैंने स्वय विरुद्ध प्रवृत्ति की है उस अन्यथा प्रवृत्ति के करने कराने में जो पाप उपार्जित हुआ है वह चारित्र के सद्भाव में नष्ट हो जाता है और अभिनव पाप भी नष्ट हो

जाता है तथा चारित्र के होने पर मुनि उत्तम तप सम्बन्धी आश्चर्य कारक बुद्धि आदि सात प्रकार की ऋद्धियां को प्राप्त होता है। ऐसे इस उत्तम चारित्र के अनुष्ठान करने में जो मैंने प्रमादवश गुरु निंदित पाप उपार्जन किया है वह मेरे अपनी आत्म निन्दा करने वाले के मिथ्या होवे ॥ ६ ॥

ससार व्यसनाहति प्रचलिता नित्योदयप्रार्थिन ।
प्रत्यासन्न विमुक्तय सुमतय शातैनस प्राणिन
मोक्षस्यैव कृत विशालमतुल सोपानमुच्चैस्तराम,
आरोहन्तु चरित्र मुत्तममिद जैनेन्द्रमोजस्विन । १०

जो ससार सम्बन्धी दु खों से पीड़ित हैं, जो प्रतिदिन मोक्ष लक्ष्मी की प्राथना करते हैं, जिनकी मुक्ति निकट है, बुद्धि समीचीन है, जिनका पाप शान्त हो गया है ऐसे तेजस्वी प्राणी मोक्ष के लिए किये गये विशाल अनुपम सोपान (जीना) के समान जिनेन्द्रोक्त इस उत्तम चारित्र को धारण करें।

अचलिका

इच्छामि भंते ! चारित्तभत्तिकाओस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउ सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स सव्वपहाणस्स णिव्वाणमग्गस्स कम्मणिज्जरफलस्स खमाहारस्स पचमहव्वयसपण्णस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पच-समिदिजुत्तस्स णाणज्झाण साहणस्स समया इव पवे-

न्मयस्स सम्मचारित्तस्स सया अर्चेमि, पूजेमि, [illegible]
णामसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, [illegible]
गमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

हे भगवन्! मैंने चारित्रभक्ति [illegible]
उसके दोषों की आलोचना करना चाहता हूं। [illegible]
से युक्त है, सम्यक्त्व से अविछिन्न है सब [illegible]
है, निर्वाण का मार्ग है, कर्मों का निर्जरा [illegible]
का आधार है, पांच महाव्रतों से [illegible]
संरक्षित है, पांच समितियों से युक्त है, [illegible]
साधन है, और समता के समान [illegible]
को मैं नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा [illegible]
हूँ और नमस्कार करता हूँ। [illegible]
क्षय होवे, बोधिका लाभ होवे, सुगति [illegible]
मरण होवे और जिनेन्द्र के गुणों [illegible]

बृहत् आलो[illegible]

श्री गौतम स्वामी मुनियों [illegible]
आदि द्वारा प्रतिदिन उपार्जित [illegible]
विशुद्धि के लिए दि [illegible]
दिखाते हुए कहते हैं—

इच्छामि भंते । [illegible]

दिवसाए अट्ठण्हं राईण [illegible]

णाणायारो दसणायारो वीरियायारो तवायारो चरित्तायारो चेदि।

हे भगवन्! ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार का आचार है। अट्ठमियम्मि पाठ की अपेक्षा अष्टमिक में अट्ठमियं पाठ की अपेक्षा आठ दिन और आठरात्रि के भीतर जो ज्ञानादिक में अतिचार लगा है उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ–

इच्छामि भन्ते! पक्खियम्मि आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरसण्हं राईणं अब्भतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दसणायारो चरित्तायारो तवायारो वीरियायारो चेदि।

हे भगवन्! पाक्षिक में या दिन गणनाकी अपेक्षा पन्द्रह दिन और पन्द्रह रात्रि के भीतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार के आचार में अतिचार लगा है उसकी आलोचना करना चाहता हूँ।

इच्छामि भन्ते! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराइणं अब्भतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दसणायारो चरित्तायारो तवायारो वीरियायारो चेदि।

हे भगवन् ! चार महीनों में या आठ पक्ष एकसौ बीस दिन और एक सौ बीस रात के भीतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार के आचार में अतिचार लगा है उसकी आलोचना करना चाहता हूं

इच्छामि भंते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउं बार-सण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्हं छावट्ठिस-यदिवसाणं, तिण्हं छावट्ठिसयराईणं अब्भंतरादो पंच-विहो आयारो णाणायारो दंसणायारो चरित्तायारो तवायारो वीरियायारो चेदि।

हे भगवन् ! वर्ष भर में या बारह मास चौबीस पक्ष, तीन सौ छयासठ दिन और तीन सौ छयासठ रात के भीतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार वीर्याचार और चारित्राचार में इस प्रकार पांच प्रकार के आचार में अतिचार लगा है उसकी आलोचना करना चाहता हूं। *

तत्थ णाणायारो काले विणये उवहाणे बहुमाणे तहेव अणिण्हवणे विंजण अत्थ तदुभय चेदि णाणा-यारो अट्ठविहो परिहाविदो से अक्खरहीणं वा सर-हीणं वा पदहीणं वा विंजणहीणं वा अत्थहीणं वा

* इस प्रकार आष्टमिक, पाक्षिक चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के समय आलोचना करे।

गथहीण वा थाएसु वा थुईसु वा अत्थक्खाणेसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो काले वा परिहाविदो अच्छाकारिद मिच्छामेलिद आमेलिद वा मेलिद अण्णहादिण्ण अण्णहा पडिच्छिद आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ १ ॥

इस पाच प्रकार के आचार म पहला ज्ञानाचार है उसके मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान इस प्रकार पाच भेद होते हुए भी यहा पर श्रुतज्ञान का ही ग्रहण है। क्योंकि इसीका कालादि आठ प्रकार से आचरण संभव है। श्रुतज्ञानाचार आठ प्रकार का है। सन्ध्या ग्रहण उल्कापात आदि अकालो को छोडकर शास्त्रोक्त प्रशस्त काला म शास्त्र का पठन पाठन, श्रवण-श्रावण, चिन्तन परिवर्तन, व्याख्यान आदि करना कालाचार है (१) पर्यंकादि सुखासना से बैठकर कायिक वाचिक और मानसिक शुद्ध परिणामा से पठन-पाठन आदि करना विनयाचार है (२) अवग्रह (नियम) विशेष पूर्वक पठन-पाठनादि करना उपधानाचार है (३) गन्ध पुष्प आदि द्रव्य पूजा और सिद्ध श्रुत और गुरु भक्ति रूप भाव पूजा पूर्वक पठन-पाठन आदि करना बहुमानाचार है (४) जिस गुरु स पढा है उस गुरु का नाम न छिपाकर उसीका नाम कहना या जिस शास्त्रको पढकर ज्ञानी हुआ है उसे न छिपाकर उसी

शास्त्र का नाम बताना अनिह्नवाचार है (५) वर्ण पद, वाक्य की शुद्धि पूर्वक शास्त्रों का पठन-पाठनादि करना व्यञ्जनाचार है (६) अर्थ के अनुकूल पठन-पाठन आदि करना अर्थाचार है (७) तथा शब्द और अर्थ की शुद्धि पूर्वक पठन-पाठन दि करना उभयाचार है (८) काल विनय उपधान, बहुमान, अनिह्नव, व्यञ्जन शुद्ध, अर्थशुद्ध और उभयशुद्ध इस प्रकार आठ प्रकार का ज्ञानाचार है उसका अनेक तीर्थंकर देवों के गुणों का व्याख्यान करने वाले स्तवनों में एक तीर्थंकर के गुणों का व्याख्यान करने वाली स्तुतियों में चारित्र और पुराण इन अर्थाख्यानों में प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगोंमें कृति वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में स्वरहीन, सुरव्यञ्जनहीन पद मात्रा, अक्षरादि व्यञ्जन हीन, अर्थहीन वाक्य अधिकारादि रहित अथवा हीन पठन पाठन आदि करके परिहापन किया, सन्ध्या ग्रहण उल्कापातादि अस्वाध्याय काल में आगम का स्वाध्याय किया, कराया और स्वयं करते हुए की अनुमोदना की आगम विहित सामयिकादि काल में स्वाध्याय नहीं किया, बिना विचारे अर्थ तथा ग्रहण धारण उच्चारण किया, किसी को किसी अविद्यमान के साथ मिलाया शास्त्र के अन्य अवयव को किसी अन्य अवयव के साथ जोड़ा उच्चध्वनि युक्त पाठ का नीचध्वनि वाले पाठ के साथ और नीचध्वनि युक्त पाठ को उच्चध्वनि वाले पाठ के साथ जोड़ कर पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया छह आवश्यकों में उनके कालानुसार अनुष्ठान न कर परिहीनता करके ज्ञानाचार का परिहापन किया

उस ज्ञानाचार परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत में विफलता हो या ज्ञानाचार परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या-निष्फल हो।

दंसणायारो अट्ठविहो णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य उवगूहणठिदिकरण वच्छल्ल पहावणा चेदि। अट्ठविहो परिहाविदो संकाए कंखाए विदिगिंच्छाए अण्णदिट्ठी पसंसणदाए परपाखंड पसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। २।

दर्शनाचार निःशंकित निःकांक्षित, निर्विचिकित्सत्व अमूढदृष्टित्व, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इस प्रकार आठ प्रकार का है। जिनोक्त तत्त्व न यह इस प्रकार है या अन्य प्रकार है ऐसी शंका न करना निशंकिताचार है। इस लोकमें धन-धान्य, हिरण्य-सुवर्ण आदि वैभव की और परलोक में बलदेव वासुदेव, चक्रवर्ती राजे, महाराजे आदि पदों की तथा एकान्तवाद से दूषित परमतों की आकांक्षा न करना निष्कांक्षिताचार है। मुनियों के अंग, मल आदि से ग्लानि न करना निर्विचिकित्साचार है। लौकिक आचार वैदिक आचार, और अन्य कुमतोंमें तथा अन्य मिथ्यादृष्टियों में मोह न करना अमूढदृष्टित्वाचार है। किसी कारण से सम्यग्दृष्टियों में उत्पन्न हुए दोषों का प्रच्छादन करना या प्रकट न करना उपगूहनाचार है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से

चलचित्त हुए व्यक्तियों को फिर से उनमें स्थिर करना स्थितीकरणाचार है। साधर्मीजनों में गोवत्सवत् स्नेह करना वात्सल्याचार है और विशिष्ट स्नपन, पूजा, दान तप आदि के द्वारा तथा विद्या-मंत्रों द्वारा जिनशासन का माहात्म्य प्रकट करना प्रभावनाचार है। इस प्रकार आठ विध दर्शनाचार का जिनोक्त तत्त्व प्रतिपादित रूप से हैं या नहीं धर्मी आशंका से इस व्रत, तप, धर्म आदि के माहात्म्यसे मुझे अमुक फल प्राप्त हो ऐसी आगामी भोगों की वांछासे, स्वभावतः अशुचि और रत्नत्रय से पवित्र मुनियों के काय में जुगुप्सा (ग्लानि) से, मिथ्यामतों की प्रशंसा से परपाखंडियों की प्रशंसा से छह अनायतनों की सेवा से साधर्मीजन में प्रीति न करने से और स्नपनादि द्वारा जिन शासन का माहात्म्य प्रकट न करके जो परिहापन (खण्डन) किया है, उस दर्शनाचार के परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत मिथ्या-विफलता होवे या मेरा दुष्कृत मिथ्या- विफल होवे॥

तवायारो वारसविहो अब्भतरो छव्विहो वाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ वाहिरो अणसणं अवमोदरियं वित्ति-परिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्त सयणासणं चेदि। तत्थ अब्भतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउसग्गो चेदि। अब्भ-तर वाहिर वारसविह तपो कम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं। ३।

तप आचार बारह प्रकार का है छह बाह्य तपाचार और छह अभ्यंतरतपाचार। उनमें से बाह्य तपाचार के अनशन (उपवास), अवमौदर्य (अर्धोदर या अल्पभुक्ति आदि) वृत्ति परिसंख्यान, घृतदुग्ध आदि रसों का त्याग, शरीर परित्याग आतापनादि द्वारा कायक्लेश, और विविक्त शय्यासन छ भेद हैं तथा आभ्यन्तर तपाचार के प्रायश्चित्त, विनय, वैया वृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग छह भेद हैं उक्त बारह प्रकार का तप कर्म परिषह आदिकों से पीडित होकर मैंने न किया किन्तु परीषह आदि से पीडित होकर छोड दिया। उ बारह प्रकार के तपाचार के परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत विफल हो वे या मेरा दुष्कृत विफल होवे ॥ ३ ॥

वीरियायारो पचविहो परिहाविदो वरवीरिय परि-क्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण णिगू हिय तवो कम्म ण कद णिसण्णेण पडिक्कत तस्स मिच्छा मे दुक्कड। ४।

पाच प्रकार के वीर्याचार का परिहापन किया। तपश्चरण करने में सामर्थ्य प्रकट करना वीर्याचार है। सामर्थ्य को छिपा लेना परिहापन है। परपराक्रम, यथोक्तमान, बल, वीर्य और पराक्रम य पाच वीर्य के भेद हैं। वीर्य के पराक्रम (उत्साह) का नाम वीर पराक्रम है उत्कृष्ट वीर्य को पराक्रम कहते हैं। इस वरवीर्य पराक्रम से अनशनादि तप करना चाहिए। आगम म मान (परिमाण) स तप करना कहा गया है उसी मान स

तप करना यथोत्साह वीर्य कहलाता है। आगम में विषय-ग्राम की विधि या चान्द्रायण व्रतों की विधि जिस स्थान में कही गई है अथवा कायोत्सर्ग करने की विधि कही जो चार कहीं छत्तीस बार पंच नमस्कार मंत्र का जाप इत्यादि रूप कहा गई है वहां उसी स्थान से वैसा रूप तप करना चाहिये। आहारादि अन्य शारीरिक बल और स्वाभाविक आत्म सामर्थ्य अर्थात् आत्म शक्ति के अनुसार तप करना चाहिये। आगम में प्रत पालन का जो उत्कृष्ट क्रम कहा गया है जैसे मूल गुणों का अनुष्ठान करने वाले को उत्तरगुणों का अनुष्ठान करना चाहिये न कि विपरीत इसका नाम पराक्रम वीर्य है। इस पांच प्रकार के वीर्याचार को प्रकट करने वाले मुनि के द्वारा जब तप किया जाता है तब पांच प्रकार का वीर्याचार अनुष्ठित होता है और जब परीषह आदि से पीड़ित होकर उस प्रकार से तप का अनुष्ठान नहीं किया जाता है किन्तु परिषह आदि से पीड़ित होकर उपक्रम त्याग दिया जाता है तब तप करने में वीर्य के होते हुए भी वह वीर्य निगूहित अर्थात् अपहन्ति हो (छिप) जाता है। इस प्रकार पांच प्रकार का वीर्याचार परिहापित (रहित) होता है। इसलिए इस वीर्य परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत मैं विफलता होवे या वह वीर्य परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत विफल होवे ॥ ४ ॥

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंचमहव्वयाणि पंच समिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमं महव्वदं

पाणादिवादादो वेरमण से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जा संखेज्जा आउकाइया जीवा असंखेज्जा संखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जा संखेज्जा वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा तस्स उद्दावणं परिदावणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार मिलकर तेरह प्रकार चारित्राचार होता है वह गुरु से रहित हुआ। तेरह प्रकार चारित्राचार में पहला प्राणातिपातसे विरमण नामका महाव्रत है। प्राण दश है—पांच इन्द्रिया, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु इस प्रकार दश। इन प्राणों के धारक एकेन्द्रियादि के भेद से पांच प्रकार के जीव हैं। उनमें से प्रथम एकेन्द्रिय जीवों का प्ररूपण करते हुए कहते हैं—

असंख्यातासंख्यात पृथिवीकायिक जीव असंख्यातसंख्यात जल कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात अग्निकायिक जीव, असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीव और छेदे भेदे गये अनंतानंत हरित, बीज और अंकुर नामक वनस्पतिकायिक जीव। इस पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों का उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया हो, अन्यके द्वारा कराया हो और अन्य स्वयं करता हुआ अच्छा माना हो उस पृथिवीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के उत्तापना सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

वेदविद्या ज्ञान अत्यिमाजनेगत्रा इक्तिविमि सरद कुलनय वरान्द कारच महर्षादि पडगाल सबुक लिन्दि पुनविराल्का मेरि उगवत्र परिदावण विशहरा उवयानी करो इत् करिया वा कोरता वा, ममरगु म— गिगदी रून्द हिन्दुवे तुहार।

[illegible] इन्द्रिय [illegible] सवद्ध रहत हैं-दो इन्द्रिय आर [illegible] हैं। वह हैं-क्षय, कर्म मल, [illegible] वराग्द [illegible], मूह मार पुनवि [illegible] इत्यादि और में। [illegible] की [illegible] इन्द्रिय जीवों का [illegible] मैने स्वय [illegible] अन्य [illegible] का [illegible] का अनुमोदना मिथ्या है।

[illegible] [illegible] [illegible]भगवेगत्रा कुन्यदे ह्रय सिद्धिर गोविन्द [illegible] नामासीलियाड्या सदगि उद्वान [illegible] मसादा वदो ना वादिवो वा वौंऊो रा [illegible] वैसम मिच्छा मे दुगार्य।

[illegible] इस प्रकार प्रतिपादन वर [illegible] [illegible] मे [illegible]

जाव असंख्यातासंख्यात हैं । वे हैं–कुन्थु, देहिक चिन्टु गोभि
गार्जी, मावाड (खटमल) पिपीलिका इत्यादि और भी तीन
इन्द्रिय जीवों का उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात
मैंने स्वय किया हो अन्य से कराया हो, स्वय करते हुए की अनु
मोदना की हो। उस तीन इन्द्रिय जीवों के उत्तापनादिक से उपा
र्जित मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

चतुरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दसमसय
मक्खिय पयंग कीड भमर महुयरि गोमच्छियाइया एदसिं
उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो
वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं

अब चौइन्द्रिय जीवों के भेद दिखा कर उनके उपघातादिक
की व्यावृत्ति दिखाते हुए कहते हैं । चौइन्द्रिय जीव असंख्याता-
संख्यात होते हैं । वे हैं–दंशक (डांस) मशक (मच्छर), मक्खी
पतंग कीट, भ्रमर (भौरा), मधुमक्खिका गोमक्खिका इत्यादि और
भी उनका उत्तापन, परितापन विराधन और उपघात मैंने स्वयं
किया हो, अन्य से कराया हो और स्वय करते हुए अन्य की
अनुमोदना की हो। उस चौइन्द्रिय जीवों के उत्तापनादि से उपा
र्जित किया हुआ दुष्कृत मेरे मिथ्या हो ।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अण्डाइया
पोताइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा

उब्भोदया उववादिमा अवि चउरासीदि जोणि पमुह सदसहस्सेसु एदेसिं उद्दावण परिदावण विराहण उवधादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

अब पंचेन्द्रिय जीवों का प्ररूपण कर उनके उत्तापनादिक से विरति का प्ररूपण करते हुए कहते हैं। पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात होते हैं व होते हैं अण्डायिक, पोतायिक, जरायिक, रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम उद्भेदिम उपपादिम इत्यादि और भी चौरासी लाख योनियों में प्रमुख पंचेन्द्रिय जीव। उन अण्डायिकादि पंचेन्द्रिय जीवों का उत्तापन, परितापन विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया हो कराया हो स्वयं करते हुए की अनुमोदना की हो वह पंचेन्द्रिय जीवों के उत्तापनादिक सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १ ॥

अहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा राएण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा सव्वो मुसावादो भासिओ भासाविओ भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

यदि मुझे पहले महाव्रत में प्राणों के व्यतिपात से विरक्त होना चाहिए तो दूसरे महाव्रत में क्या करना चाहिये यह बताते हैं-अब अन्य दूसरे महाव्रत में मृषावाद से विरमण होना चाहिए वह मृषावाद क्रोधसे, मानसे मायामे, लोभसे, राग से, द्वेष से, मोहसे हास्य से, भय से, प्रमाद से, प्रेम (स्नेह) से, पिपासा विषय सेवन की बुद्धि से, लज्जासे, गारव (महत्वाकांक्षा) से और भी किसी कारण से स्वयं अल्प असत्य स्वयं बोला हो, दूसरे से बुलाया हो तथा स्वयं बोलते हुए अन्य की अनुमोदना की हो तो उस मृषावादादि भाषण सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ॥

आहावरे तच्चे महव्वदे अदिण्णदाणादो वेरमणं से गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसमे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं वा कट्ठं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं अदत्तं गिण्हियं गेण्हावियं गेण्हिज्जंतं समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

अनन्तर द्वितीय महाव्रत से भिन्न तृतीय महाव्रत में उस वस्तु के स्वामी या अन्य किसी के द्वारा बिना दी हुई वस्तु के आदान (ग्रहण) से विरक्त होना चाहिए। उस ग्राम में, नगर में, खेट में, मडम्बट में मंडप में, मडल में पट्टन में, द्रोणमुख में घोषमें, आश्रम में, सभा में, संवाह में, सन्निवेश में, इन स्थानों में कहीं

भा तृण, काष्ठ, विकृति (गोमयादि) और मणि इत्यादि अल्प मूल्य वाली या बहु मूल्य वाली बिना दी हुई वस्तु मैंने स्वय ग्रहण की हो दूसरे से ग्रहण कराई हो, और स्वय ग्रहण करते हुए का अनुमोदना की हो तो उस अदत्तादान सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ३ ॥

आहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमण से देविएसु वा माणुसिएसु वा तेरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा मणुणामणुणेसु रूवेसु मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणाम-णुणेसु गन्धेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु चक्खिदिय परिणामे सोदिंदिय परिणामे घाणिंदिय परिणामे जिब्भिदिय परिणामे फासिंदिय परिणामे णोइंदिय परिणामे अगुत्तेण अगुत्तिदिएण णवविह बभचरिय ण रक्खिय ण रक्खाविय ण रक्खिज्जतो वि समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ४ ॥

अनन्तर तीसरे महाव्रत से जुदे चौथे महाव्रत में मैथुन से विरक्त होना चाहिए। उसका यह अतिचार है—देवियों के, मानु पियों के तिर्यचणियों के और अचेतन कृत्रिम स्त्रियों का प्रतिकृ तिया के मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूप में मनोज्ञ-अमनोज्ञशब्द में मनोज्ञ अमनोज्ञ गन्ध में मनोज्ञ अमनोज्ञ रसम और मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श में जो कि क्रमश चक्षुइन्द्रिय, कर्णइन्द्रिय, नासिका इन्द्रिय

जिह्वा इन्द्रिय और स्पर्शन इन्द्रिय के विषय और हैं उा तथा नोइन्द्रिय मनक अनियत विषय हैं उनमें मन वचन काय से सवरण न कर और अपनी इन्द्रियों को वश में न रख कर जो मैंने नव प्रकार के ब्रह्मचर्य की स्वयं रक्षा नहीं की, न दूसरे से कराई और न स्वयं रक्षा करते हुए की अनुमोदना की उस नवविध ब्रह्मचर्य के आरक्षण सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ४ ॥

अाहावरे पचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं मो नि परिग्गहो दुविहो अब्भन्तरो बाहिरो चदि । तत्थ अब्भतरो परिग्गहो णाणावरणीय दसणावरणीय वेयणीय मोहणीय आउग्ग णाम गोद अ तराय चेदि अट्ठविहो । तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरण भण्ड फलह पीढ कमडलु सथार सेज्ज उवसेज्ज भत्त पाणादि भेएण अणेयविहो एदेण परिग्गहेण अट्ठविह कम्मरय बद्ध बद्धाविय बद्ध-ज्जत नि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ५ ॥

अनन्तर चतुर्थ महाव्रत से भिन्न पचम महाव्रत में परिग्रह से विरमण करना चाहिए। वह (परिग्रह) भी दो प्रकार का है आभ्यन्तर और बाह्य। उसमें से आभ्यन्तर परिग्रह ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनीय मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय इस प्रकार आठ प्रकार का है। दूसरा बाह्य परिग्रह उपकरण ज्ञानोपकरण (पुस्तकादि और सयमोपकरण पिच्छिकादि) भाड अर्थात् औषध तेल आदि के पात्र, फलक पापों से रहित सोने

गादि की पट, पीठ (बठने का विस्तर) स्महनु सस्तर (कम्बल गणादिमय) शय्या (वसतिका) उपशय्या (पट्टरमला जैव कुतिका गादि) भक्त, पान (ओदनादि) दुग्धनकादि इत्यादि अनेक प्रकार का है। इस उक्त प्रकार के बाह्याभ्यन्तर ते प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशादि भेदों में विभक्त प्रकार कर्म रज मैंने स्वय बाधा अन्य से बंधवाया और बाधते हुए अन्य की अनुमोदना की उस बाह्याभ्यन्तर ते उपार्जित मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

आहावरे छट्ठे अणुव्वदे राईभोयणाओ वेरमणं समणं पाण खादिय स्वादिय चेदि चउव्विहो तित्तो वा कडुओ वा कसाइलो वा अम्बिलो वा लवणो वा दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुस्समिणीओ रत्तीए भुत्ता भुजाविया समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं॥ ६॥

पाच अणुव्रतों से जुदा छठा अणुव्रत रात्रिभोजन से विरमण है। प्राणातिपातादिक की तरह इसमें विरमण का अभाव है। इसलिए इसे अणुव्रत कहा है, इस रात्रि भोजन विरमण व्रत में रात में भोजन का त्याग होता है दिन में नहीं होता। दिन में भोजन में प्रवृत्ति सम्भव है इसलिए अणुव्रत है रात्रि भोजन विरमण

प्रत भात दाल आदि असन दुग्ध तक्र जलादि पान, मोदकादि खाद्य, कच्युत्पादक सुपारी इलायची जावित्री आदि स्वाद्य, इस प्रकार चार प्रकार हैं। उक्त चार प्रकार का आहार तिक्त कटुक, कषाय, आमिल, मधुर और लवण रूप होता है। यह खाने पीने योग्य न होते हुए भी खाने पीने योग्य चिन्तन किया गया, अयोग्य भी आहार खावें ऐसा कहा गया। अयोग्य भी आहार को खाने के लिए कायसे स्वीकारता दी गई और दुःस्वप्नित अर्थात् स्वप्न में खाया, इस प्रकार रात्रिमें स्वयं खाया, खिलाया, स्वयं खाने की अनुमोदना की। तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

पंच समिदीओ ईरियासमिदी भासासमिदी एसणासमिदी आदाणणिक्खेवण समिदी उच्चार पस्सवण खेल सिंहाणय वियडिय पइट्ठावणसमिदी चेदि। तत्थ इरियासमिदी पुव्वुत्तर दक्खिण पच्छिम चउदिसि विदिसासु विहरमाणेण जुगंतर दिट्ठिणा दिट्ठव्वा डवडव-चरियाए पमाद दोसेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षपण समिति और उचार-प्रस्रवण-श्लेल-सिंहाणक-विकृति प्रति-

ष्ठापनिका समिति इसप्रकार समितियां पांच हैं। उनमें से ईर्या समिति पूर्व, उत्तर दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओं और वायव्य, ईशान नैऋत और आग्नेय इन चार विदिशाओं में विहार करते हुए को चार हाथ प्रमाण सामने की भूमि देख कर चलना चाहिए किन्तु प्रमाद वश जल्दी, जल्दी ऊपर मुख करके इधर उधर गमन करने के कारण विकलेन्द्रिय प्राणियोंका, वनस्पति-कायिक भूतोंका, पंचेन्द्रिय जीवों का और पृथ्व्यादिकादि वायुकायिक पर्यन्त के चार सत्वों का उपघात मैंने स्वयं किया हो, अन्य से कराया हो और स्वयं करते हुए की अनुमोदना की हो। उस उपघात सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥७॥

तत्थ भासा समिदी कक्कसा कडुया परुसा णिट्ठुरा परकोहिणी मज्झकिसा अइमाणिणी अणयंकरा छयंकरा भूयाण वहंकरा चेदि दसविहा भासा भासिया भासाविया भासिज्जंतो विसमणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ७

उनमें भाषासमिति दश प्रकार है उन दश प्रकारों को दिखाते हैं तू मूर्ख है कुछ नहीं जानता इत्यादि रूप सन्ताप-जनक कर्कशभाषा, तू जाति हीन है, अधर्मा (पापा) है इत्यादि रूप उद्वेग उत्पन्न करने वाली कटुकभाषा, तू अनेक दोषों से दूषित है इस प्रकार मर्म भेदने वाला परुष (कठोर) भाषा, तुम मारूंगा, तेरा सिर काट लूंगा इस

प्रकार का निष्ठुरभाषा, तेरा तप किसी काम का नही तू प्रहसनशील है, निर्लज्ज है इस तरह का औरों को रोष उपजाने वाली परकोपिनी भाषा, ऐसी निष्ठुर भाषा जो हड्डियों का मध्य भाग भी छेद दे वह मध्यकृशा भाषा, अपना महत्व स्थापन करने वाली और दूसरों की निन्दा करने वाली अतिमानि नाभाषा, समान स्वभाव वालो में ऊँची भाव पैदा कर देनेवाली या मित्रो में परस्पर विद्वेष करा देने वाली अनयङ्करी भाषा, धार्य शील और गुणो को जड मूल से विनाश कर देने वाली अथवा असद्भूत गुणो का उद्भावन करने वाली छेदङ्करी भाषा और प्राणियो के प्राणों का वियोग कर देने वाली वधकरी भाषा इस प्रकार दश प्रकार की भाषा मैंने स्वयं बोली हो, दूसरे से बुलाई हो और स्वयं बोलते हुए दूसरे की अनुमोदना की हो उस दश प्रकार भाषा सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥७॥

तत्थ एसणा समिदी आहा कम्मेण वा पच्छा कम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा कीडयडेण वा साइया रसाइया सइङ्गाला सधूमिया अइगिद्धीए अग्गिए छण्हं जीवणिकायाणं विराहणं काऊण अपरिसुद्ध भिक्खं अण्णं पाणं आहाराविय आहारन्तं आहाराविं अहारिज्जंत वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ८

उसमें उद्गमादि दोषो से रहित निरवद्य आहार ग्रहण करना एषणा समिति है। और जो उद्गमादि दोषो से युक्त अशुद्ध

आहार है उसे मुनियों को ग्रहण नहीं करना चाहिए आहार में अशुद्धता कैसे होती है यह कहते हैं—अध कर्म अर्थात् छः काय आदि छह जीवनिकाय की विराधना करके बनाये गए आहार से, पश्चात्कर्म अर्थात् भोजन करके मुनि के चले जाने पर फिर भोजन बनाना प्रारम्भ करने से, पुराकर्म अर्थात् मुनि ने भोजन किया नहीं उसके पहले भोजन बनाना प्रारम्भ करने से, उद्दिष्टकृत अर्थात् मुनि को ही उद्देश्य कर जो भोजन बनाया अथवा पाखंडी आदि के उद्देश्य कर जो भोजन बनाया उसके ग्रहण करने से, निर्दिष्टकृत अर्थात् आपके लिए यह बनाया गया है ऐसा कहकर आहार ग्रहण करने से, क्रीतकृत दोष के दो भेद हैं एक द्रव्यक्रीतकृत और दूसरा भावक्रीतकृत। मुनियों को चर्यामार्ग द्वारा आते देख कर अपने अथवा पर के गाय, भैंस बैल आदि चेतन द्रव्यों को अथवा सुवर्ण आदि अचेतन द्रव्यों को देकर भोजन सामग्री लाना और उससे भोजन तैयार कर मुनियों को देना द्रव्यक्रीतकृत है तथा अपनी या पर की प्रज्ञप्ति आदि विद्या या चेटिका आदि मन्त्र देकर भोजन सामग्री लाना और उससे भोजन बनाकर मुनीश्वरों को देना भावक्रीतकृत दोष है इस प्रकार के क्रीतकृत के इत्यादि दोषों से युक्त रसादिक रसना की आसक्ति से दातार आदि की निन्दा करते हुए अत्यन्त गृद्धिपूर्वक अग्नि की तरह छः जीवनिकायों की विराधना करके अयोग्य अन्न पान रूप आहार ग्रहण स्वयं किया, दूसरे को कराया और स्वयं करते हुए दूसरे की अनुमोदना की, इस सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥६॥

तत्थ आदानण---णिक्खेवण समिदी चक्कल वा फलह वा पोथय वा कमण्डल वा वियडि वा मणि वा एवमादय उवयरण अप्पडिलहिऊण गेण्ह-तेण वा ठवतेण वा पाण-भूद-जीव-सत्ताण उववादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ९ ॥

इन पांच समितियों में चतुर्थ आदान निक्षेपण समितिमें चक्कल, फलक, पुस्तक, कमण्डलु, विकृति और मणि इत्यादि उपकरण पिच्छी द्वारा प्रतिलेखन न करके उठाते हुए और धरते हुए मैंने प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का उपघात स्वयं किया हो, कराया हो और स्वयं करते हुए की अनुमोदना की हो तो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १० ॥

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडिपइ-ट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा वियाले वा अचक्खु विसये अवत्थंडिले अप्पोवयासे सणिद्धे सबीए सहरिए एवमाइ-एसु अप्पासुगट्ठाणेसु पइट्ठावंतेण पाण भूद-जीव सत्ताण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १० ॥

उचार, प्रस्रवण, श्लेल, सिंहानक विकृति इन चारोंके त्यागने में प्राणियोंकी पीड़ा के परिहार में यत्न करना आवश्यक है उसमें प्रवलमान मैंने प्रमाद वश रात में, सन्ध्याके समय, चक्षु से देखने में न आवे ऐसे सत्कार किये हुए या न किये या किये हुए अप्रासुक इस भूमि प्रदेश में, सत्कार न किये हुए नीचे अप्रासुक भूमिप्रदेशमें अभ्रावकाश याना वृक्ष आदिसे अप्रच्छादि अप्रासुक खुले स्थानमें यह उपलक्षण रूप है इससे वृक्षादिक से प्रच्छादित अप्रासुक स्थान का भी ग्रहण होता है उसम स्निग्ध (गीले) प्रदेशमें, बीजयुक्त हरितकाय युक्त भूमिप्रदेशमें इस प्रकार के अप्रासुक प्रदेशोंमें उचार प्रस्रवण आदिका उत्सर्जन करते हुए मैंने प्राण, भूत जीव और सत्वों का उपघात किया हो, अन्यसे कराया हो और स्वय करते हुए अन्य की अनुमोदना की हो तो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १० ॥

तिण्णि गुत्तीओ मण गुत्तीओ वचि गुत्तीओ काय गुत्तीओ चेदि, तत्थ मणगुत्ती अट्ठे भाणे रुद्दे भाणे इहलोय सण्णाए परलोए सण्णाए आहार सण्णाए भय सण्णाए मेहुण सण्णाए परिग्गह सण्णाए एवमाइयासु जा मण गुत्ती ण रक्खिआ ण रक्खाविया ण रक्खिज्ज-तंपि समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ११ ॥

मनगुप्ति, वचनगुप्ति और काय गुप्ति इस प्रकार तीन गुप्तियां हैं। मन, वचन और काय इन तीन योगों के प्रचार के

सम्यक् निग्रह करने को गुप्ति कहते हैं। उनमें अशुभपरिणामों का रोकना मनगुप्ति है। गृहस्थों जैसी उत्सूत्र भाषा का रोकना या मौन धारण करना वचनगुप्ति है। और अपने हाथ पैर आदि की यथेष्ट प्रवृत्ति रोकना कायगुप्ति है। इनमें से मनगुप्ति का आर्त्तध्यान में रौद्रध्यान में, इस लोक सम्बन्धी और पर लोक सम्बन्धी आहार, भय मैथुन और परिग्रह संज्ञाओं में मैंने जो संरक्षण न किया हो, अन्य से संरक्षण न कराया और स्वयं संरक्षण न करने की अनुमोदना की हो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १२ ॥॥

तत्थ वचिगुत्ती इत्थि कहाए भत्त कहाए रायकहाए चोर कहाए वेर कहाए परपासंड कहाए एवमाइयासु जा वचि गुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतो समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १३ ॥

उनमें से वचनगुप्ति के विषय में कहते हैं—स्त्रीकथा, भक्त कथा, भय कथा, राजकथा चोरकथा वैरकथा, परपाखंडकथा, इस प्रकार की कथाओं में जो मैंने स्वयं वचनगुप्ति की रक्षा नहीं की हो न दूसरे से न कराई हो और न स्वयं रक्षा करते हुए की अनुमोदना की हो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १३ ॥

तत्थ कायगुत्ति चित्तकम्मेसु वा पोत कम्मेसु वा कट्ठकम्मेसु वा लेप्प कम्मेसु वा एवमाइयासु जा

काय गुत्ती ए रक्खिया ए रावखाविया ए रक्खिज्जतो व समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ १३ ॥

अब आ तीन गुप्तियों में से तीसरी काय गुप्ति के सम्बन्ध में कहते हैं चित्रादि स्त्रियों के रूप आदि में अपने हाथ पैरों का रक्षण करना काय गुप्ति है। चेतन स्त्रीके रूपादिक में तो प्रायश्चय के कारण से ही कायका गोपन स्वयं सिद्ध है अचेतन के विषयमें किस किस में काय का गोपन करना चाहिए यह बताते हैं— चित्र, पोत, काष्ठ, लेप सम्बन्धी स्त्रियों के रूप आदि में जो मैंने स्वयं गुप्ति का संरक्षण नहीं किया, न दूसरे से कराया और न स्वयं रक्षण करते हुए दूसरे की अनुमोदना की, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ १३ ॥

णवसु बम्भचेर गुत्तीसु चउसु सण्णासु चउसु पच्चएसु दोसु अट्टरुद्दसकिलेस परिणामेसु तीसु अप्पसत्थ संकिलेस परिणामेसु मिच्छणाणा मिच्छा दसण मिच्छा चारित्तेसु चउसु उवसग्गेसु पचसु चरित्तेसु छसु जीवणिकाएसु छसु आवासएसु सत्तसु भयेसु अट्ठसु सुद्धीसु णवसु बभचेर-गुत्तीसु दससु समणधम्मेसु सदु धम्मज्झाणेसु देससु मुण्डेसु बारसेसु सजमेसु बावीसाए परीसहेसु पणवीसाए भावणासु पणवीसाए किरियासु अट्ठारस सील-सहस्सेसु चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु मूलगुणेसु उत्तर

गुत्तेसु अट्ठमियम्मि पक्खियम्मि चउमासियम्मि, सवच्छरम्मि, अइक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो त पडिक्कमामि मए पडिक्कत तस्स मे सम्मत्तमरण समाहिमरण पडियमरण वीरियमरण दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झ ।

नव प्रकार ब्रह्मचय गुप्तियों में, चार सज्ञाओंमें कमबन्धके कारण चार मिथ्यात्वादि प्रत्ययाम मे आत्तरौद्रसक्लेशपरिणामोंमें माया मिथ्या निदान रूप तीन अप्रशस्त परिणामों में चार उपसर्गों में पाच सामायिक चारित्रों में, छह जावनिकायोंमें, छह आवश्य काम सात भयोंमें आठशुद्धियोंम नव ब्रह्मचय गुप्तियों में, दश श्रमणधर्मों म, दश धर्मध्यानाम, दश मुण्डों म, बारह सयमोंमे बाइस परिषहा में, पचास भावनाओं म पचीस क्रियाओं में, अठारह हजार शालों में, चौरासी लाख गुणा में मूलगुणों में, और उत्तर गुणोंम इत्यादि विधि निषेध स्वरूप चर्याचारों में आष्टमिक पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक अनुष्ठानों म अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग और अनाभोग से जो दोष हुआ है उसका प्रतिक्रमण-निराकरण करता हू । मेरे दोष दूर किये उसको मेरा सम्यक्त्वमरण, समाधिमरण, पण्डितमरण, वीर्यमरण, दु खक्षय, कर्मक्षय, बोधिलाभ, सुगतिगमन और जिनेन्द्रगुणों की प्राप्ति हो ।

सिद्ध-भक्ति

(सिफ आचार्य 'णमो अरहंताणं इत्यादि पाच पदों का …च्चारण कर कायोत्सर्ग करके 'थोस्सामि' इत्यादि पढकर 'तव-सिद्धे' अञ्चलिका सहित गाथा पढकर फिर पूर्वोक्त विधि करके …'प्रावृट् काले सविद्युत' इत्यादि अञ्चलिकायुक्त योगिभक्ति पढ़कर …इच्छामि भंते ! चरित्ताचारो तेरसविहो इत्यादि पांच दण्डक पढ …र, तथा 'वदसमिदिंदिय' इत्यादि छेदोवट्ठावण होउ मज्झं' …य … त नमस्कार पढ़कर, अपने दोषों की दण्डक आगे आलोचना …रे और दोषोंके अनुसार प्रायश्चित्त ग्रहण कर 'पंचमहाव्रत' …इत्यादि पाठ तीन बार पढकर योग्य शिष्यादिकोंको प्रायश्चित्त …कर देनेके लिए गुरुभक्ति दे । उसके बाद फिर आचार्यसहित …ध्य मुनि और साधर्मी मुनि आचार्य के आगे इसी पाठ को …ढकर प्रतिक्रमण भक्ति करे । वह सब इस प्रकार)—

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं …रोम्यहम्—

हे भगवन् ! नमस्कार हो, मैं सब अतिचारों की विशुद्धिके …ए सिद्ध भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ ।

('णमो अरहंताणं' इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं …त्वा थोस्सामीत्यादि भणित्वा)—

णमो अरहंताणं इत्यादि पांच पदों को बोलकर कायोत्सर्ग …े । फिर थोस्सामि इत्यादि पढकर सिद्ध भक्ति पढ़े ।

…म्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।

…गुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ १ ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे सजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमसामि ।२

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, सम्मणाणसम्मदसणसम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं सजमसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्च काल अचेमि पूजेमि वदामि णमसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसपत्ति होउ मज्झं ।

इन दोनों गाथा सूत्रों का अर्थ प्रारम्भ में कहा जा चुका है और अञ्चलिका का अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में कहा जा चुका है, वहां देखें ।

लघुयोग भक्ति

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थमालोचनायोगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

हे भगवन् ! नमस्कार हो, सब अतिचारों की विशुद्धि के लिए आलोचनायुक्त योगिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ ।

(णमो अरहंताणं इत्यादि पचपदों का उच्चारण कर कायोत्सर्ग करें। थोस्सामि इत्यादि पढ़ें —)

(ऐसा प्रतिज्ञापत्र करके 'णमो अरहंताणं' आदि पंच पदों का उच्चारण कर थोस्सामि इत्यादि पढ़कर योगि भक्ति पढ़े

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासा,
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभया काष्ठवत्त्यक्तदेहा ।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगता स्थानकूटान्तरस्था-
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूता ॥१॥
गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु ।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥ २ ॥
गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥३॥

जिसमें विद्युत् का चमचमाहट हो रहा है और पानी मूसलाधार पड़ रहा है ऐसे वर्षाकालमें जो वृक्षोंके मूलमें निवास करते हैं। हेमन्त ऋतु में रात्रि के मध्यमें भयसे रहित होकर जिनने काष्ठ के समान अपना देह त्याग रक्खा है और जो ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणों से तप्त पर्वतों की शिखरों पर सूर्य के सन्मुख ध्यान धरते हैं, वे मोक्ष का निःश्रेणीभूत मुनिगण वृषभ मुझे धर्म देवें ॥ १ ॥

जो ग्रीष्म में पर्वत के शिखर पर स्थिर होकर ध्यान धरते हैं। वर्षा कालमें रात दिन वृक्षों के मूल में कायोत्सर्गसे खड़े रहते हैं और शिशिर ऋतु में रात्रि के समय नदियों के किनारे पर खुले आकाश में सोते हैं, उन महान् साधुओं को मैं नित्य वन्दना करता हूं ॥ २ ॥

जो दिगम्बर साधु पर्वतकी कन्दरा रूप दुर्गोंमें बसते हैं, पाणिपात्र के पुटमें अर्थात् पाणिपुट में आहार लेते हैं, वे साधु उत्कृष्ट मोक्षगति जाते हैं ।३।

इच्छामि भंते ! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदा-

वराक्खमूलअब्भोवासठाणमोणवीरासणेक्कपासकुक्कु-
डासणचउछपक्खखवणादिजोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं
अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्म-
क्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण-
संपत्ति होउ मज्झं।

हे भगवन्! योगिभक्ति से सम्बन्धित कायोत्सर्ग मैंने किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

अढाई द्वीप दो समुद्र और पन्द्रह कर्म भूमियों में आतापन योग, वृक्षमूल योग, अभ्रावकाश योग स्थान, वीरासन मौन, एक पार्श्व, कुक्कुटासन, चतुर्थ पक्षक्षपणादि योगों से युक्त सब साधुओं की अर्चा करता हूँ पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ नमस्कार करता हूँ मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र के गुणों की सम्यक् प्राप्ति हो।



आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि पंचसमिदीओ तीगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवीकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउका-इया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाइया जीवा

अणतायता हरिया बीया अ मुरा छिण्णा भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणु मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड १

बेइंदिया जीवा असखेज्जासखेज्जा कुक्खिकिम्मि सक्खुल्लय वराडय-अक्ख-रिट्ठ-गडवाल-सवुक्क सिप्पि पुलविकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ २ ॥

तेइन्दिया जीवा असखेज्जा कुन्थु देहियविछिय-गोभिंद-गोजुव मक्कुण पिपीलिया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं उवघादो कदो या कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥ ३ ॥

चउरिंदिया जीवा असखेज्जासखेज्जा दसमसयम-क्खियपयगकीडभमरमहुयरगोमक्खिया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो या कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।४।

पचिंदिया जीवा असखेज्जासखेज्जा अडाइया पोदाइया रसाइया ससेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।५।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो ...

खिदिसयणमदंतवण ठिदिभोयणमेयभत्त च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाण जिणवरहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावण होउ मज्झं । ३ ॥

प्रायश्चित्तशोधनरसपरित्याग क्रियते ।

पचमहाव्रत-पचसमिति पचेन्द्रियरधो—लोच-पडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणा, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्म, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणा, त्रयोदशविध चारित्र, द्वादशविध तपश्चेति सकलसम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिक सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत सुव्रत समारूढ ते मे भवतु ३

आलोचनाका, व्रतसमितीन्द्रिय इत्यादि सूत्रोंका और पच महाव्रत इत्यादि व्रतारोहण का अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमणमें कहा जा चुका है वहां देखें

निष्ठापनाचार्य भक्ति—

नमोस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

नमस्कार हो निष्ठापनाचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूं। यह प्रतिज्ञा कर ६ जाप्य दर, फिर भक्ति पढे। भक्ति और इच्छामि भत इत्यादिका अर्थ पूर्व में आचुका है।

श्रुतजलधिपारगेभ्य स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्य ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्य १
छत्तीसगुणसमग्गे पचविहाचारकरणसदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वदे ॥२॥

गुरुभत्तिसजमेण य तरति ससारसायर घोर ।

छिण्णति अट्ठकम्म जम्मणमरण ण पावेंति ३

ये नित्य व्रतमन्त्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुला,

षट्कर्माभिरतास्तपोधनधना साधुक्रियासाधव ।

शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्राकतेजोऽधिका,

मोक्षद्वारकपाटपाटनभटा प्रीणन्तु मा साधव ।४।

गुरव पातु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायका ।

चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशका ।।५।।

इच्छामि भन्ते पक्खियम्मि आलोचेउ, पचमहव्त्रयाणि तत्थ पढम महव्वद पाणादिवादादो वेरमण, विदिय महव्वद मुसावादादो वेरमण, तिदिय महव्वद अदिण्ण-दाणादो वेरमण, चउत्थ महव्वद मेहुणादो वेरमण, पचम महव्वद परिग्गहादो वेरमण, छट्ठ अणुव्वद राईभोयणादो वेरमण, तिम्सु गुत्तीसु ण्णसु दसणेसु चरित्तेसु, वावीसाए परिसहेसु पणवीसाए भावणासु पणवीसाए किरियासु अट्ठारसशीलसहस्सेसु चउरासी-दिगुणसयसहस्सेसु वारसण्ह सजमाण वारसण्ह अगाण तेरसण्ह चरित्ताण चउदसण्ह पुव्वाण एयारण्ह पडिमाण दसविहमुडाण दसविहसमणधम्माण दस-विहधम्मज्झाणाण णवण्ह बभचेरगुत्तीण णवण्ह णोक-सायाण सोलसण्ह कसायाण अट्ठण्ह कम्माण अट्ठण्

पउयणमाउयाण सत्तण्ह भयाण सत्तविहससाराण छण्ह जीवणिकायाण छण्ह आवासयाण पचण्ह इदयाणं पचण्ह महव्वयाण पचण्ह समिदीणं पचण्ह चरित्ताण चउण्ह सण्णाण चउण्ह पच्चयाण चउण्ह उवसग्गाण मूलगुणाण उत्तरगुणाण अट्टण्ह सुद्धीण दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा एदेसि अच्चासणदाए तिण्ह दडाण तिण्ह लेस्साण तिण्ह गारवाण तिण्ह अप्पसत्थसकिलेसपरिणामाण दोण्ह अट्टरद्दसकिलेसपरिणामाण मिच्छणाण-मिच्छदसण मिच्छचरित्ताण मिच्छत्तपाउग्ग असजम पाउग्ग कसायपाउग्गं जोगपाउग्ग अप्पपाउग्गसेवणदाए पाउग्गगरहणदाए इत्थ मे जो कोई वि पक्खियम्मि (चउमासीयम्मि सवच्छरियम्मि) अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भते ! पडिक्कमामि पडिक्कमतस्स मे सम्मत्तमरण समाहिमरण पडियमरण वीरियमरण दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाण ।

खिदिसयणमदंतवण ठिदिभोयणमेयभत्त च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिपञ्चेन्द्रियरोधलोचषडा-वश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणा उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्म, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणा त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलसम्पूर्ण अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥ ३ ॥

आलोचनाका प्रकरण समाप्त हुआ इत्यादि सूत्रोंका और पंच-महाव्रत इत्यादि व्रतारोपण का अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमणमें जहां जो कहा है वही समझना।



प्रतिक्रमण भक्ति

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् —

इत्युच्चार्य 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दण्डकं पठित्वा ससुरय साधव विद्ध्यु)

मैं सब व्रतचारोंकी विशुद्धि के लिये पाक्षिक प्रतिक्रमणामें पूर्वाचार्यों के अनुक्रमसे सकल कर्म के क्षयार्थ भावपूजा वन्दना स्तव समेत प्रतिक्रमण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूं।

इस प्रकार उच्चारण कर 'णमो अरहंताणं' इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं, पारयडाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसगाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते ! सामायियं सव्वसावज्जोग पच्च-क्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंत ण समणुमणामि तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

(यथोक्तपरिकर्मानन्तरं आचार्यः "वोस्सामि" इत्यादि दण्डकं गणधरवलयं च पठित्वा प्रतिक्रमणदण्डकान् पठेत् । शिष्य-सधर्माणस्तु तावत्कालं कायोत्सर्गेण स्थित्वा प्रतिक्रमणदण्डकान् शृणुयुः)

(यथोक्त परिकर्म के अनन्तर आचार्य वोस्सामि इत्यादि दण्डक पढ़कर और गणधर-वलय पढ़कर प्रतिक्रमण दण्डक पढ़े । शिष्य सधर्मा उतने काल तक कायोत्सर्ग से स्थित हुए प्रतिक्रमण दण्डक सुनें)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चौवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयलसेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

कुंथु च जिणवरिंद अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चोवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दितु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ,
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।८।।
सामायिक दंडक और चतुर्विंशति-स्तव दंडक का अर्थ पहले आचुका है।

गणधर वलय—

जिनान् जितारातिगणान् गरिष्ठान् देशावधीन् सर्वपरावधींश्च । सत्कोष्ठबीजादिपदानुसारीन्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ।।१।। संभिन्नश्रोत्रान्वितसन्मुनीन्द्रान्, प्रत्येकसम्बोधितबुद्धधर्मान् । स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तमार्गान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ।। २ ।। द्विधा मनःपर्ययचित्प्रयुक्तान्, द्विपञ्चसप्तद्वयपूर्वसक्तान् । अष्टाङ्गनैमित्तिकशास्त्रदक्षान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ।। ३ ।। विकुर्वणाख्यर्द्धिमहाप्रभावान्, विद्याधरांश्चारणऋद्धिप्राप्तान् । प्रज्ञाश्रितानित्यखगामिनश्च स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ।। ४ ।। आशीविषान्

दष्टिविषान्मुनीन्द्रानुग्रातिदीप्तोत्तमतप्ततप्तान् । महातिघोरप्रतप प्रसक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ।५। वन्द्यान् सुरैर्घोरगुणाश्च लोके पूज्यान् बुधैर्घोरपराक्रमाश्च । घोरादिससद्गुणब्रह्मयुक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥ ६ ॥ आमर्द्धिखेलर्द्धिप्रजल्लविट्प्रसर्वद्धिप्राप्ताश्च व्यथादिहत्तृन् । मनोवच कायबलोपयुक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥७॥ सत्क्षीरसर्पिमधुरामृतर्द्धीन् यतीन वराक्षीणमहानमाश्च । प्रवर्धमानास्त्रिजगत्प्रपूज्यान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥८॥ सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान् श्रीवर्द्धमानर्द्धिविबुद्धिदक्षान् । सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरानृषीन्द्रान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥ ९ ॥

नृसुरखचरसेव्या विश्वश्रेष्ठर्द्धिभूपा,
विविधगुणसमुद्रा मारमातङ्गसिंहा ।
भवजलनिधिपोता वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनिगणसकला श्रीसिद्धिदा सदृषीन्द्राः ॥

प्रतिक्रमणदण्डक —

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो [illegible] ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए [illegible] ॥

अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लो० में सर्वसाधुओं का नमस्कार हो ॥ १ ॥

णमो जिणाण, णमो ओहिजिणाण, णमो परमोहिजिणाण, णमो सव्वोहिजिणाण, णमो अणतोहिजिणाण, णमो कोट्ठबुद्धीण, णमो बीजबुद्धीण णमो पादाणुसारीण, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयबुद्धाण, णमो पत्तेयबुद्धाण, णमो बोहियबुद्धाण, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीण, णमो दसपुव्वीण, णमो चउदसपुव्वीण, णमो अट्ठ गमहाणिमित्तकुसलाण, णमो विउव्वइड्ढिपत्ताण, णमो विज्जाहराण, णमो चारणाण णमो पण्णसमणाण, णमो आगासगामीण णमो आसीविसाण, णमो दिट्ठिविसाण, णमो उग्गतवाण णमो दित्ततवाण, णमो तत्ततवाण, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाण, णमो घोरगुणाण, णमो घोरपरक्कमाण, णमो घोरगुणबम्भयारीण, णमो आमोसहिपत्ताण, णमो खेल्लोसहिपत्ताण, णमो जल्लोसहिपत्ताण, णमो विप्पोसहिपत्ताण, णमो सव्वोसहिपत्ताण, णमो मणबलीण, णमो वचिबलीण, णमो कायबलीण, णमो खीरसवीण, णमो सप्पिसवीण, णमो महुरसवीण, णमो अमियसवीण, णमो अक्खीणमहाणसाण, णमो वड्ढमाणाण, णमो सिद्धायदणाण णमो भयवदो महदि महा

वीरवड्डमाणबुद्धरिसीणो चेदि ।
जस्सतिय धम्मपह णियच्छे तस्सतिय वेणइय पउजे ।
काएण वाचा मणसावि णिच्च सक्कारए त सिरपचमेण

जिनोंको नमस्कार हो ॥ १ ॥ देशावधि जिनोंको नमस्कार हो ॥ २ ॥ परमावधि जिनोंको नमस्कार हो ॥३॥ सर्वावधिजिनों को नमस्कार हो ॥ ४ ॥ अनन्तावधि (केवलज्ञानी) जिनों को नमस्कार हो ॥ ५ ॥ जैसे कोठे में कोठे के स्वामी द्वारा सुरक्षित और जुदे जुदे रक्खे हुए धान्यों का अवस्थान रहता है उसी तरह जिनकी बुद्धि में अवधारित ग्रन्थ और अर्थों का तप के माहात्म्य से जदा जुदा अविनष्ट अवस्थान रहता है, वे कोष्ठ के समान बुद्धि वाले जिन होते हैं उन कोष्ठ-बुद्धि के धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ ६ ॥

जैसे उपजाऊ क्षेत्र में बोया गया एक भी बीज कालादिक की सहायता पाकर अनेक बीज-प्रद होता है उसी तरह एक पद के ग्रहण से अनेक पदार्थोंकी प्रतिपत्ति जिस बुद्धि में हो वह बीज बुद्धि है । यह बीज-बुद्धि तपके माहात्म्य से जिनके हो वे बीज बुद्धि जिन होते हैं । उन बीजबुद्धि जिनोंको नमस्कार हो ॥ ७ ॥ आदि अन्त जहा तहा के एक पद के ग्रहण से समस्त ग्रन्थार्थ का अवधारण जिस बुद्धिमें हो जाय वह पदानुसारि बुद्धि है, वह पदानुसारि बुद्धि तप के माहात्म्य से जिनके होता है उन पदा नु-सारि जिनोंको नमस्कार हो ॥ ८ ॥

बारह योजन लबे और नव योजन चौड़े चक्रवर्ती के स्कन्धावार के मनुष्य,घोड़े,ऊँट, हाथी आदि से उत्पन्न अक्षरात्मक और अन-क्षरात्मक परस्पर विभिन्न भी शब्द समूहक एक साथ प्रतिभास जिस ऋद्धिके होने पर होता है वह सम्भिन्न श्रोता ऋद्धि होती है वह ऋद्धि तप के प्रभावसे जिन के होती है वे सभिन्न श्रोता ऋद्धि वाले होते हैं उन सभिन्न-श्रोता ऋद्धि के धारक जिनों को नमस्का

हो ॥ ९ ॥ वैराग्य का किंचित् कारण देखकर और परोपदेशकी कोई अपेक्षा न रख कर स्वयं ही जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे स्वयं-बुद्ध कहलाते हैं। उन स्वयंबुद्ध जिनों को नमस्कार हो ॥ १० ॥ जो परोपदेशके विना किसी एक निमित्त से वैराग्य को प्राप्त होते हैं, जैसे नीलांजना के विलयसे वृषभादिक, उन प्रत्येक-बुद्ध जिनों को नमस्कार हो ॥ ११ ॥ जो भोगों में आसक्त महानुभाव अपने शरीर आदिमें अशाश्वत रूप देख कर वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे बोधित-बुद्ध कहलाते हैं। परोपदेशसे भी जो वैराग्य को प्राप्त होते हैं वे भी बोधित-बुद्ध कहलाते हैं, उन्हें नमस्कार हो ॥ १२ ॥ ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनों को नमस्कार हो ॥ १३ ॥ विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो ॥ १४ ॥ अभिन्नदशपूर्वधारक जिनों को नमस्कार हो ॥ १५ ॥ उत्पादादि चतुर्दश पूर्वधर जिनोंको नमस्कार हो ॥ १६ ॥ अंग, स्वर व्यंजन, लक्षण, छिन्न भौम स्वप्न, अन्तरिक्ष इन आठ निमित्तों को हृदयमें रखकर जो जीवों के शुभ अशुभ को जानते हैं वे अष्टांगनिमित्तों में कुशल होते हैं। अष्टांगनिमित्त कुशल जिनों को नमस्कार हो ॥ १७ ॥ विकुर्वण ऋद्धि-प्राप्त जिनों को नमस्कार हो ॥ १८ ॥ अंग, पूर्व वस्तु प्राभृत आदि सब विद्याओंके आधारभूत विद्याधर जिनोंको नमस्कार हो ॥ १९ ॥ जल, जंघा, तन्तु पत्र, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणि पर अप्रतिहत चलने में कुशल आठ प्रकार के चारणर्द्धिधारी जिनों को नमस्कार हो ॥ २० ॥ जो औत्पत्तिकी, वैनयिक, कर्मजा और पारिणामिकी इस प्रकार चार प्रकार की प्रतिज्ञाओं के धारक हैं उन प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो ॥ २१ ॥ अभिलषमाण अर्थ की चाहना आशिष है। आशिष जिनका विष है वे आशीविष श्रमण होते हैं अथवा जिनका आशिष अमृत है वे भी आशीविष श्रमण होते हैं। उन्हें नमस्कार हो वे किसीको कह दें कि मरजाओ तो वह मर जावे। यदि वे किसीको कह दें कि विष-रहित हो जाओ तो वह

वह जाव विषरहित हो जाव। यद्यपि वे मुनि ऐसा करते नहीं हैं परन्तु तपके प्रभावसे प्राप्त शक्तिका प्रदर्शन है ॥ २२ ॥ जिन मुनियों का दृष्टि ही विष रूप होता है या जिनका दृष्टि ही अमृत है वे दृष्टि-विष होते हैं। उन दृष्टि-विष जिनोंको नमस्कार हो २३ जो पचमी, अष्टमी और चतुर्दशीमें से किसी भी दिन उपवास की प्रतिज्ञा कर लेते हैं पश्चात दो या तीन दिन तक आहार न मिलने पर भी उन दिनोंका उसी प्रकार निर्वाह करते हैं। ऐसे साधु उग्र-तपवाले होते हैं, उन उग्रतप जिनोंको नमस्कार हो २४ चतुर्थ षष्ठ आदि उपवासोंके करने पर भी जिनके शरीरका तेज बल तप जनित लब्धिके माहात्म्यसे प्रतिदिन शुक्लपक्षके चन्द्रमा की तरह बढता जाता है, वे दीप्त तप जिन होते हैं उनको नमस्कार हो ॥ २५॥ जिनके अग्निसे संतप्त लोह पर पतित जलकणिका समान ग्रहण किये हुए चतुर्विध आहारका शोषण हो जानेके कारण नीहार नहीं होता है, वे तप्ततप होते हैं उन तप्त-तप जिनोंको नमस्कार हो ॥ २६ । जो पक्ष मास उपवासादिकके अनुष्ठानमें तत्पर हैं महातप ऋद्धिके धारक होते हैं अथवा जो अणिमादि आठगुणोंसे सपेत हैं, जलचारणादि आठ प्रकारके चारण गुणोंसे अलकृत हैं, स्फुरायमान शरीर प्रभा वाले हैं द्विविध अक्षण ऋद्धिसे युक्त हैं, सर्वौषधि स्वरूप हैं, पाणिपात्रमें पतित सब आहारोंको अमृत स्वरूपसे पलटानेमें समर्थ हैं इन्द्रोंसे भी अनन्तगुणे बल वाले हैं, आशीर्विष और दृष्टिविष लब्धियोंसे समन्वित हैं, तप्ततप ऋद्धिके धारक हैं, सब विद्याओंके धारक हैं तथा मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय ज्ञानोंसे तीन लोकके व्यापारको जानने वाले हैं, वे मुनि महातप ऋद्धिके धारक होते हैं उनको नमस्कार हो ॥ २७ ॥ जो सिंह, सिंह, शार्दूल आदिसे आकुल पर्वतोंके गह्वर आदि में प्रचुरतर शीत, वात, आतप, दश-मशक आदिसे युक्त भयानक श्मशानों मेंनाहर ध्यान धरते हैं और दुर्धर उपसर्गोंको सहन

तत्पर हैं, वे घोर-तपके धारक होते हैं। उन घोर तपके धारक जिनोंको नमस्कार हो ॥ २८ ॥

अत्यन्त भयंकर रोगसे पीडित और महाभयंकर एकान्त स्थानमें रहते भी जो मुनिगण स्वीकृत तपायोगों की वृद्धिमें ही सदा तत्पर रहते हैं वे घोरपराक्रम नामक ऋद्धिके धारक हैं। उनको नमस्कार हो ॥ २६ ॥ बहुत कालसे जो अस्खलित ब्रह्मचर्यके धारक हैं और उत्कृष्ट चारित्र-मोहनीय कर्मके क्षयोपशमसे जिनके समस्त दुःस्वप्न नष्ट हो गये हैं, वे घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक हैं उनको नमस्कार है ॥ ३० ॥

किन्हीं किन्हीं ग्रन्थोंमें 'अघोर गुण ब्रह्मचारी' ऐसा भी पाठ देखा जाता है उस अपेक्षा यहां यह अर्थ किया गया है कि ब्रह्म का अर्थ पांच व्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप चारित्र है क्योंकि वह शान्तिका पुष्टिका कारण है। अघोर अर्थात् शान्त हैं गुण जिनमें वह अघोरगुण है अघोर गुण ब्रह्मका आचरण करने वाले अघोर-गुण-ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जिनके तपके प्रभावसे डमरादि मारि (रोग) दुर्भिक्ष, वैर, कलह वध, बन्धन, रोध आदिके प्रशमनकी शक्ति उत्पन्न हुई है वे अघोर गुण ब्रह्मचारी हैं। उन अघोर गुण ब्रह्मचारी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ आम अर्थात् अपक्व आहार वह ही जिनके औषधपनेको प्राप्त है उन आमौषधि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो। ॥३२॥ खेल नाम निष्ठीवन, लार, नासिकामल आदिका है वह खेल ही जिनका औषधिपनेको प्राप्त हैं वे खेलौषधि प्राप्त होते हैं उन खेलौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३३ ॥ सारे शरीरके मलको जल्ल (प्रस्वेद-पसीना) कहते हैं वही जिनका औषधिपनेको प्राप्त हो जाता है उन जल्लौषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३४ ॥ विप्रुड् नाम ब्रह्मबिन्दु अर्थात् वीर्यका है वह वीर्य ही जिनका औषधिपनेको तपके प्रभावसे प्राप्त हो जाता है उन विप्रुडोषधिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो। विट्ठौसहि-

पत्ताए ऐसा भी पाठ है उसका अर्थ विष्ठा ही जिनका औषधिरूप को प्राप्त हो गई है उन विष्ठौषधि-प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ सब अर्थात् रस, रुधिर, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, पुप्फुस, खराष कालेय, मूत्र, पित्त, आंत, उच्चार (पुरीष) नख केश ये सब जिनके औषधिरूपको प्राप्त हो गये हैं उन सर्वौषधि-प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥ बारह अगोंमें निर्दिष्ट त्रिकालगोचर अनन्त अर्थपर्यायों व व्यंजन पर्यायों से युक्त छह द्रव्योंका निरंतर चिन्तन करने पर भी खेद को प्राप्त न होना मनबल है, यह मनबल जिनके है उनको मनबली कहते हैं उन मनबली जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३७ ॥ बारह अंगोंका कई बार परिवर्तन (पाठ) करके भी जो खेदको प्राप्त नहीं होता है, वह वचन वचन-बल है। तपके माहात्म्य से उत्पादित वचन-बल वाले वचन-बली कहलाते हैं उन वचन बली जिनोंको नमस्कार हो ॥ ३८ ॥

जो तीनों भुवनोंको हाथकी अंगुलीसे उठाकर अन्य स्थानमें रखनेमें समर्थ हैं उनकी कायबली संज्ञा है उन काय बली जिनों को नमस्कार हो ॥ ३९ ॥ क्षीर अर्थात् दूध स्राव अथवा स्वाद जिनके है वे क्षीरस्रावी या क्षीरस्वादी होते हैं। उनके पाणिमें पतित विषादि कुत्सित अशन भी तपके माहात्म्यसे क्षीर रूप परिणत हो जाता है या उसमें क्षीर जैसा स्वाद आने लगता है वे क्षीरस्रावी होते हैं उन क्षीर-स्रावी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४० ॥ सर्पिका अर्थ घृत है। घृतस्रावी या घृतस्वादी जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४१ ॥ मधुर शब्दसे मधुर रसका ग्रहण होता है, अथवा महुस्रावी ऐसा भी पाठ है, तदनुसार मधु शब्द से गुड खांड, शक्करा आदिका ग्रहण होता है। क्योंकि मधुर स्वादके प्रति इनके समानता पाई जाती है। जो हाथमें रखे हुए सब आहारोंको गुड, खांड, शर्करा के रसादि स्वरूपसे परिण-मन करनेमें समर्थ हैं वे मधुर-स्रावी मधुरस्वादी अथवा

मधुस्वादी जिन होते हैं उनको नमस्कार हो ॥ ४२ ॥ जिनके हाथोंको प्राप्त हुआ आहार अमृतके स्वाद स्वरूपसे परिणत होता है वे अमृत-स्रावी या अमृत-स्वादी जिन होते हैं जो कि यहां उपस्थित होते हुए दृष्टाहार-भोजी होते हैं उन अमृतस्रावी या अमृत-स्वादी जिनोंको नमस्कार हो । ४३ । जिनका महानस अक्षीण है वे अक्षीण महानस होते हैं । जिस भोजनसे आहार निकाल कर उन्हें दिया जाता है, वह भोजन चक्रवर्तीके स्कन्धावारको जिमा देने पर भी वृद्धि विशेषके कारण उस दिन सूर्यास्त तक क्षीण नहीं होता है, वे अक्षीण महानस होते हैं उन्हें नमस्कार हो । अथवा अक्षीण महानस शब्द देशामर्शक है इसलिए उससे वसति-अक्षीणता भी ग्रहण होता है । दोनों ही का अर्थ कहा है कि जिसके भात, घृत या मिठाई हुआ अन्न परोस लेनेके पश्चात् चक्रवर्तीके स्कन्धावारको देने पर भी समाप्त नहीं होता है, वह अक्षीण महानस ऋद्धि धारक कहलाता है । जिसके चार हाथ प्रमाण भी गुफामें रहने पर चक्रवर्ती का सैन्य भी उस गुफामें रह सकता है वह अक्षीणावास ऋद्धि धारक होता है । उन अक्षीण महानस व अक्षीणावास जिनोंको नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ सिद्धोंके निर्वाणस्थानोंको नमस्कार हो ।

अथवा सर्व-सिद्ध इस वचनसे पूर्वमें कहे हुए समस्त जिनों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जिनोंसे पृथक् भूत देश सिद्ध और सर्व-सिद्ध पाये नहीं जाते । सब सिद्धोंके जो आयतन हैं वे सर्व सिद्धायतन हैं । इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृहों का तथा जिनप्रतिमाओंके निलयोंका तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त चंपा, पावानगरादि सब निषेधिकाओंका ग्रहण होता है । उन सब जिनायतनोंको नमस्कार हो ॥ ४५ ॥ सद्दर्शन विशिष्ट मत्यादि ज्ञानत्रयके धारक अथवा पूजाके अतिशयको प्राप्त भग-

५ वान् महावीर, वर्धमान, बुद्ध और ऋषिको नमस्कार हो। ये सब अन्तिम तीर्थंकर भगवान्के नाम हैं। क्योंकि ऋषि प्रत्यक्ष-ज्ञ या ऋद्धि धारकका नाम है, भगवान महावीर प्रत्यक्षवेदी भी थे और ऋद्धि-धारक भी थे, इसलिए ये ऋषि थे। हेय और उपादेयके विवेकसे सम्पन्नको बुद्ध कहते हैं। भगवान हेयोपा-देयके विवेकसे सम्पन्न होनेसे बुद्ध थे। भगवानके गर्भावता-रादिके समय इन्द्रने उनके माता पिताकी बड़ी भारी पूजा की, रत्नोंकी वृष्टि की और अपनी भी ऋद्धि वृद्धि आदि देख कर बन्धुजनोंने भगवानका वर्धमान यह नाम रख दिया। भगवान के जन्माभिषेकके समय भगवानका शरीर छोटा था उसे देखकर इन्द्रको आशंका उत्पन्न हो गई कि इतने बड़े बड़े कलशोंका जल यह शरीर कैसे सहन कर सकेगा। उस समय भगवानने इन्द्र की आशंका दूर करनेके लिए भगवान ने अपनी सामर्थ्य (अनन्त वीर्य) दिखलाने करनेके लिए अपने पैरके अंगूठेसे सुमेरुको हिला दिया। इस कारण इन्द्रने भगवानका 'वीर' यह नाम—करण किया। कुमार कालमें आमली क्रीड़ाके समय खेलते हुए संगम देवने अपने विमानकी गतिके स्खलन हो जाने से भय उत्पन्न करनेके लिए महान फटाटोपसे युक्त, भयानक सर्पका रूप धरकर विक्रियासे सारे वृक्षको वेष्टित कर लिया। भगवान उससे डरे नहीं। वे उस सर्पके मस्तक पर पैर रख कर वृक्षपरसे उतर गये। इस कारण संगम देवने भगवानका 'महावीर' यह नाम रख दिया। भगवान जब तप धारण कर वाराणसीमें कायोत्सर्गमें स्थित थे, तब रुद्रने उन्हें ध्यानसे विच-लित करनेके लिए महान उपसर्ग किया। उस उपसर्गको जीत लेनेसे रुद्रने उनका नाम महतिमहावीर रखा।

यहां पर 'चेति' इस [illegible] से भगवानमें उक्त नामोंका संसूचन

किया गया है। इति शब्द यहाँ पर प्रकार अर्थमें आया है। इस प्रकार-वाले इष्ट देवताके रूपमें शास्त्रके प्रारम्भमें स्तवन करने योग्य हैं। यह चेरिका अर्थ है।

सभा चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुत्य हैं फिर भी य थ यतौ गणधर देवने भगवान वर्द्धमान जिनेश्वरकी ही स्तुति क्यों की, इसका उत्तर ऐसा आशंका होने पर कहते हैं।

जिस भगवानके समीप मैं धर्मके मार्गमें नियमसे प्राप्त हुआ हूँ उस भगवानके समीप काय, वचन और मनसे सबकाल विनय प्रयुक्त करता हूँ। विनय ही प्रयुक्त नहीं करता हूँ किन्तु जिस जानुद्वय और करद्वयमें पाँचवा सिर है उससे सत्कार करता हूँ—नमस्कार करता हूँ॥ १॥

इस प्रकार गणधर-वलय नामक प्रतिक्रमण-सम्बन्धी मंगलाष्टक समाप्त हुआ।

सुदं मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण भयवदा महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोग-दरसिणा सदेवासुरमाणुसस्स लोयस्स आगदिगदिच-वणोववाद बंध मोक्ख इड्ढि ठिदि जुदि अणुभाग तक्क कल मणोमाणसिय भूत कय पडिसेविय आदि-कम्म अरहकम्म सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणता पस्सता विहरमाणेण समणाणं पंचम-हव्वदाणि राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउगपदाणि सउत्तरपदाणि सम्मं धम्मं उवदेसि-दाणि। तं जहा—

हे आयुष्मान् भव्यो ! इस भरत क्षेत्रमें देव, असुर, और मनुष्यों सहित प्राणिगणका [१]आगति, [२]गति, [३] [४]च्यवनोपपाद, [५]बन्ध [६]मोक्ष, [७]ऋद्धि, [८]स्थिति [९]युति [१०] अनुभाग [११]तर्क, [१२]कला, [१३]मन, [१४]मानसिक, [१५]भूत, [१६]कृत, [१७]प्रतिसेवित, [१८]आदिकर्म [१९]अरुहकम इनको तीनसौ तेतालीस रज्जुप्रमाण और लोकमें सब जीवों, सब भावों और सब पर्यायोंको एक साथ जानते हुए, देखते हुए तथा विहार करते हुए काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान सर्वज्ञ सर्वदर्शी महतिमहावीर अन्तिम तीर्थंकर देवने पच्चीस भावनाओं सहित, मातृका पदों सहित और उत्तर—पदों सहित रात्रि भोजन विरमण है छठा अणुव्रत जिनमें ऐसे पांच महाव्रत—रूप समीचीन धर्मोंका उपदेश दिया है, वह मैंने उनकी दिव्यध्वनिसे सुना है।

उन उक्त विशेषणोंसे विशिष्ट महाव्रतोंका स्वरूप जैसा भगवान ने क्रमसे कहा है वैसा ही ग्रन्थकार प्रतिपादन करते हैं

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमण, तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमण, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमण पचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमण, छट्ठे अणुव्वदे राईभोयणादो वेरमण चेदि।

१—अन्यस्थानसे यहां आना, २ यहासे अन्यत्र जाना ३ च्युत होना, ४ जन्म लेना ५ कर्मोंका बन्ध, ६ कर्मोंका मोक्ष ७ चक्रवर्ती तथा सौधर्मादिदेवोंका ऋद्धि ८ आयुस्थिति, ९ द्युति, १० कर्मोंका फल देनेका सामर्थ्य ११ तर्क शास्त्र, १२ बहत्तर-कला या गणितविद्या १३ परकाय चित्त १४ मनकी चेष्टा १५ पूर्व अनुभूत, १६ पूर्वकृत १७ पुन सेवित १८ कर्मभूमिके अनुप्रवेशमें प्रथमत प्रवृत्त असि, मसि, कृष्यादिक कर्म १९ अकृत्रिम द्वीप समुद्रादिका प्रकट कर्म।

प्रथम महाव्रतमें प्राणोंके प्रतिपात (व्यपरोपण) से विरमण, दूसरे महाव्रतमें मृषावादसे विरमण, तीसरे महाव्रतमें अदत्तादानसे विरमण चौथे महाव्रतमें मैथुनसे विरमण और पाँचवें महाव्रतमें परिग्रहसे विरमण तथा छठे अणुव्रतमें रात्रि भोजनसे विरमण करना चाहिए।

उनमेंसे भगवान द्वारा उपदिष्ट पहले महाव्रतमें अनुष्ठाता मुनिके लिए साकल्यसे विरति दिखाते हुए कहते हैं—

तत्थ पढमे महव्वदे सव्व भंते ! पाणादिवाद पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से एइन्दिया वा बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढविकाइए वा आउकाइए वा तेउकाइए वा वणप्फदिकाइए वा तसकाइए वा अंडाइए वा पोदाइए वा जराइए वा रसाइए वा संसेदिमे वा सम्मुच्छिमे वा उब्भेदिमे वा उववादिमे वा तसे वा थावरे वा बादरे वा सुहुमे वा पाणे वा भूदे वा जीवे वा सत्ते वा पज्जत्ते वा अपज्जत्ते वा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणेज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि पुव्विचण भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसगदेण सयं पाणे अदिवादाविदे अण्णेहि पाणे अदिवादाविदे अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं पि इमस्स णिग्गंथस्स

पावयणस्स धम्मस्स देवनियम्म देवलिपण्णसस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाप्पवरस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडि रस चउरासीदिगुणमय-सहस्सविहूसियस्स णवबंभचेरगुत्तस्स नियतिलक्खणस्स परिचायफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाणस्स, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असम णेण वा अणहिगमणेण वा अभिमसिदाएण वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आससदाए सम्मभारिगदाए सम्मगुम्मदाए सम्मदुच्चरिदाए सम्मपुरक्खदाए तिगारवगुरुगदाए अबहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए ॥ सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसिय, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचिय आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंत पडिक्कमामि,विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि

अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णक्कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्हणीलकाउलेस्सं वोस्सरामि तेउपम्मसुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि, णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयणमेकभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविहंतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं

उवसपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्ल उवसपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसपज्जामि, अभावियं भावेमि, भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं ण भविस्सदि, णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि माण

मायामोस-मूरण-मिच्छाणाण मिच्छादसण-मिच्छा-चरित्त च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदसण-सम्म-चरित्त च रोचेमि, ज जिणवरेहि पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय पक्खियचाउम्मासियसवच्छरिय इरिया-वहिकेसलोचाइचारस्स सथारादिचारस्स पथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त च रोचेमि। पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण उवट्ठावण-मडले महत्थे महागुण महाणभावे महाजसे महापुरि-साणु चिण्णे अरहतसक्खिय सिद्धसक्खिय साहुसक्खिय अप्पसक्खिय परसक्खिय देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्हि इद मे महव्वद सुव्वद दढव्वद होदु, णित्थारय पारय तारय आराहिय चावि ते मे भवतु।

प्रथम महाव्रत सर्वथा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत सुव्रत समारूढ ते मे भवतु ॥ १ ॥

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरीयाण।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ॥ २ ॥

उक्त प्रकारके पाँचमहाव्रतोंमें हे भगवन्! सब स्थूल और सूक्ष्म प्राणातिपातका आवन पर्यन्त तान प्रकार मन, वचन और कायसे परित्याग करता हूँ।

उस प्रथम महाव्रत-सम्बन्धी जो प्राणोंके व्यपरोपण का त्याग है वह किस तरह करना चाहिए? यह कहते हैं—एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय तथा

पृथिवी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक और त्रस कायिक, अंडायिक, पोतायिक, जरायिक रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उद्भेदिम, और उपपातिम त्रस और स्थावर, बादर और सूक्ष्म, प्राण, भूत, जीव, और सत्व, पर्याप्त और अपर्याप्त तथा चौरासी लाख योनि प्रमुख जीव इन सब जीवोंमें स्वयं प्राणोंका अतिपात (घात) न करे, न अन्य से प्राणोंका अतिपात करावे और न स्वयं प्राणोंका अतिपात करते हुए अन्योंकी अनुमोदना करे।

हे भगवन्! इस प्रथम महाव्रतसम्बन्धी अतिपातका प्रतिक्रमण (निराकरण) करता [redacted]। अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता [redacted]। हे भगवन् पूर्व (अतीत) कालमें उपार्जित अतिपातका त्याग करता हूँ। जो मैंने राग, द्वेष, और मोहके वशीभूत होकर स्वयं प्राणोंका अतिपात किया है, दूसरोंसे प्राणोंका अतिपात कराया है और स्वयं प्राणोंका अतिपात करते हुए अन्यको अनुमोदना की है उन सबका त्याग करता हूँ। यह जो निर्ग्रन्थ रूप है, पावन है, अथवा प्रवचनमें प्रतिपादित है, इससे भिन्न और कोई उत्कृष्ट नहीं है, केवलिप्रज्ञप्त है, अहिंसा लक्षणका धारक है, सत्यसे अधिष्ठित है, विनयका मूल है, क्षमासे श्रेष्ठ है, अठारह हजार शीलोंसे परिमंडित है, चौरासी लाख गुणोंसे अलंकृत है, नव प्रकारके ब्रह्मचर्यसे सुरक्षित है, विषयोंकी व्यावृत्तिसे सहित है, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागका फल है, क्रोधादिकके त्यागका प्रधान कारण है, परम समाधि मार्गका प्रधान रूप और अहिंसामें समभावका उपदेशक है, मुक्ति अर्थात् कर्मोंका एक देश निर्जराके उपायका प्रकाशक है सिद्धि अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंकी निर्जरा या अनन्त चतुष्टयकी प्राप्तिका मार्ग यथाख्यात चारित्रका परम प्रकर्ष है, ऐसे इस निर्ग्रन्थ धर्मको क्रोध मान, माया, लोभ, अवीर्य (शक्तिके अभाव) असंयम,

ग्रहण, अनिधार, अबोध, राग, द्वेष, मोह, हास्य, भय, मद्य प्रमाद, भ्रम, विषयोंका अतिगृद्धि, लज्जा, गारव, आलस्यता कर्मोंके बोझ, प्रदेशोंकी बहुलता, कर्मोंकी शक्तिका बाहुल्य, कर्मों दुश्चारित्रता, कर्मोंकी अत्यन्त तीव्रता, तीन गौरवोंकी उत्कटता, अल्पश्रुतता (सकल शास्त्रोंमें अप्रवीणता) परमार्थके ज्ञानका अभाव इन सब कारणोंसे पूर्व दुश्चरित्रकी गुरु–साक्षीसे गर्हा करता हूं प्रतिक्रमणसे निराकरण करता हूं। आगामी अप्रत्यख्यात (अत्यस्त) दुश्चरित्रका प्रत्याख्यान द्वारा से निराकरण करता हूं। क्योंकि आगामी दुश्चरित्रका निराकरण प्रतिक्रमणसे नहीं होता। इसका कारण यह है कि कृत दोषोंके निराकरण करनेमें ही प्रतिक्रमणका सामर्थ्य है। इसलिए भावी दोषोंके कारण रागद्वेष आदिकी उत्पत्तिका निराकरण प्रत्याख्यानसे होता है अनालोचित की आलोचना करता हूं। अनिन्दितकी निन्दा करता हूँ, अगर्हित की गर्हा करता हूँ अप्रतिक्रान्तका प्रतिक्रमण करता हूँ, विराधना अर्थात् रत्नत्रयके विषयमें मन, वचन और कायसे की गई सावद्य वृत्तिको त्यागता हूं। रत्नत्रयकी आराधना अर्थात रत्नत्रयके विषयमें मन वचन और कायसे निरवद्य वृत्तिका अनुष्ठान करता हूं, मिथ्या मति श्रुत अवधि स्वरूप अज्ञानका त्याग करता हूं। मति श्रुत अवधि मन पर्यय केवल, स्वरूप सम्यग्ज्ञानका अनुष्ठान करता हूं। विपरीताभिनिवेश स्वरूप कुदर्शनका त्याग करता हूं। तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शनका अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यारूप चारित्रका त्याग करता हूं। सामायिकादि सम्यक्रूप चारित्रका अनुष्ठान करता हूँ। पंचाग्नि–साधनादि कुतपका त्याग करता हूँ। बाह्याभ्यन्तर अनशनादि सुतपका अनुष्ठान करता हूँ। अव्रतादि अकृत्यका त्याग करता हूँ। पालन करने योग्य अहिंसादि व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। प्राणोंके व्यपरोपणका त्याग करता हूँ। अभयदानका अनुष्ठान करता हूं।

—

मृषावादका त्याग करता हूँ। सत्यका अनुष्ठान करता हूँ। अदत्तादान (चोरी) का त्याग करता हूँ। दिये हुए योग्य (अचौर्य) का अनुष्ठान करता हूँ। अब्रह्म (कुशील) का त्याग करता हूँ। ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करता हूँ। परिग्रहका त्याग करता हूँ। अपरिग्रहका अनुष्ठान करता हूँ। रात्रि भोजनका त्याग करता हूँ। यथाकाल प्राप्त प्रासुक एक भुक्ति भोजनका अनुष्ठान करता हूँ। आर्त रौद्र ध्यानका त्याग करता हूँ। धर्म शुक्लध्यानका अनुष्ठान करता हूँ। जीवको पाप कर्मसे लिप्त करने वाला कृष्ण, नील और कापोत लेश्याका त्याग करता हूँ। जीवको पुण्य कर्मसे लिप्त करने वाला पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याका अनुष्ठान करता हूँ। असि, मषि, कृष्यादि व्यापारका त्याग करता हूँ। असि, कृषि आदि व्यापार अभावका अनुष्ठान करता हूँ। असंयमका त्याग करता हूँ संयमका अनुष्ठान करता हूँ, सग्रन्थका त्याग करता हूँ। निर्ग्रन्थका अनुष्ठान करता हूँ। चेल अर्थात् वस्त्रका त्याग करता हूँ। उससे विपरीत अचेलका अनुष्ठान करता हूँ। लोचका अनुष्ठान करता हूँ। स्नानका त्याग करता हूँ। अस्नान का अनुष्ठान करता हूँ। अक्षिति शयन अर्थात् खट्वादि शयन का त्याग करता हूँ। क्षितिशयनका अनुष्ठान करता हूँ। दन्तवनका त्याग करता हूँ। अदन्तवनका अनुष्ठान करता हूँ। अस्थिति भोजन (बैठकर) भोजन करनेका त्याग करता हूँ। एक बार स्थिति भोजनका अनुष्ठान करता हूँ। पात्रमें भोजन करनेका त्याग करता हूँ। पाणिपात्रमें भोजनका अनुष्ठान करता हूँ। क्रोधका त्याग करता हूँ। क्षमा धारण करता हूँ।

मानकषायका त्याग करता हूँ। मार्दव को धारण करता हूँ। मायाका त्याग करता हूँ। आर्जव धारण करता हूँ। परिग्रहमें गृद्धि स्वरूप लोभका त्याग करता हूँ। सन्तोष धारण करता हूँ। अतपका त्याग करता हूँ। बारह प्रकार तप कर्मका अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यात्वका परित्याग

करता हूँ। सम्यक्त्व स्वीकार करता हूँ। व्रतके विघातक अशीलका परिवर्जन करता हूँ। व्रत परिरक्षक सुशीलको प्राप्त करता हूँ। सशल्यपनेका परिवर्जन करता हूँ। निःशल्यका अनुष्ठान करता हूँ। अविनयका परिवर्जन करता हूँ। विनयको प्राप्त हूँ। अनाचारका परिवर्जन करता हूँ। आचारको स्वीकार करता हूँ। एकान्त वादियों द्वारा उपकल्पित उन्मार्ग का परिवर्जन करता हूँ। स्वर्गापवर्गके कारण जिन मार्गको स्वीकार करता हूँ। अक्षान्तिका परिवर्जन करता हूँ। क्षान्ति धारण करता हूँ। अगुप्तिका परिवर्जन करता हूँ। रत्नत्रयका संरक्षण करने वाली गुप्ति स्वीकार करता हूँ। अमुक्तिका परिवर्जन करता हूँ। एक देश या सर्वदेशसे कर्मोंका निर्जरा करने वाली सुमुक्तिका स्वीकार करता हूँ। धर्मध्यान और शुक्लध्यानको समाधि कहते हैं, उसके अभावको असमाधि कहते हैं, उस असमाधि परित्याग करता हूँ। सुसमाधिको धारण करता हूँ। शरीरादिमें ममत्वका त्याग करता हूँ। निर्ममत्व धारण करता हूँ। अनादि संसारमें परिभ्रमण करते हुए मैंने जिनका कभी भी भावन अभ्यास नहीं किया है उसका भावन अभ्यास करता हूँ। अनादि संसारमें जिन मिथ्यादर्शन आदि का सर्वदा भावन अभ्यास करता रहा हूँ। उस मिथ्यात्वका भावन अभ्यास मन्द करता हूँ। इस निर्ग्रन्थलिंगका श्रद्धान करता हूँ। इसको प्राप्त होता हूँ। इसमें रुचि करता हूँ इसका स्पर्श करता हूँ। यह निर्ग्रन्थलिंग मोक्षमार्गके रूपसे आगममें प्रतिपादित किया है। इस निर्ग्रन्थसे ऊपर या अन्य कोई लिंग नहीं है जो मोक्षका मार्ग हो। यह निर्ग्रन्थलिंग केवलि प्रणीत है या केवली-सम्बन्धी है। अयोग केवलीमें यह निर्ग्रन्थ लिंग सम्पूर्ण कर्मोंके क्षयका हेतु होनेसे परिपूर्ण है। परिपूर्ण रत्नत्रय रूप निकायमें उत्पन्न हुआ है इसलिए नैकायिक है। अथवा एक प्रकार नहीं किंतु अद्वितीय है। एकत्व या परम उदासीनता

या सब साधन योगका व्युत्पत्तिका समय है। उसम भी हो या वह जिसका ध्यान करना सम सामायिक करते हैं, अतः यह नियम लिए प्रकार या परम उपासनाएं या सम्यक्त्व योगम ध्यावलि रूप है। मयुद्ध है अर्थात् निर्विकार (निर्दोष) है अथवा आमाश्रयादि पापोंसेनाम विशुद्ध है। माया मिथ्या और निदान है। इन तीनों शल्योंसे रहित सबोंमें इन सात शल्यों का नाश करने वाला है। सिद्धि प्राप्त न होनेसे निर्मल अथवा मुक्ति पद सहित आदि सिद्धोंका मार्ग यह है। यदि सम्यक् दर्शनज्ञान युक्त चारित्ररूप कर्म निर्जराका कारण है अथवा यह शास नैति और पवन बलिमें आत्माका कारण है। समता भावका मार्ग है समवेतन परिस्थानका कारण है बहुत अवस्था रूप एक स्थान कषाय सबका कारण है निर्वाणका रूप सब मैथुन कार्य अथवा मार्ग है। अनुगामिन परिणमन रूप प्रकार से निर्वाणका उपाय है। संसारका अभाव या परम दुःखों मार्ग है। शारीरिक मानसिक और आगन्तुक सब दुःखों की हानिका मार्ग है। सामायिकादि विशुद्ध चारित्र प्राप्त पुरुषोंके परिनिर्वाणका मार्ग है। अथवा यह निर्ग्रन्थ लिंग अपने धारणोंका यही अनुपम या हितकारी अवाम मार्ग प्राप्त करा देता है। इस प्रकारका यह निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) लिंग है। जिसमें निरन्तर मुनिगण महान् पाँच निर्ग्रन्थ अथवा स्थानी दर्शनका और सम्यग्ज्ञान आदि यथा प्राप्त करते हैं आचार्य इत्यादि यथार्थ स्वरूपका आनन्द है, क्योंकि निर्ग्रन्थ लिंग है। यह ही आचार्य स्वभावका ज्ञान जिसका कारण है ऐसी बुद्धि आदि सन्निधाका कारण समय है। सब कर्मोंसे विशुद्ध होते हैं। इसमें गुणी आत्मा कृत-कृत्य होते हैं। शारीरिक, मानसिक आदि अखिल दुःखोंका अन्त (विनाश) करते हैं। इस प्रकार निर्ग्रन्थ [illegible] मोक्षका मार्ग कहा लिंग

[illegible] आलम्ब हुआ है।

कालमें संभावना है और न आगे अनन्त कालमें होगा। किंवा कालमें किसी गुण विशेषसे लेकर इससे उत्कृष्ट कोई लिंग नहीं है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र सूत्र शील गुण, तप नियम, व्रत विहार (आचरण) आलय (निर्ग्रन्थ आश्रय) आसन और आधार इनसे और इनसे उक्त प्रकारोंसे अन्य किसी प्रकारसे इस निर्ग्रन्थ लिंगसे उत्कृष्ट अन्य लिंग नहीं है न भूत कालमें था और न भविष्यत्कालमें होगा। इस प्रकारके निर्ग्रन्थ लिंगमें स्थित हुआ मैं श्रमण होता हैं प्राणीन्द्रिय संयमसे तत्पर संयत होता हूँ। विषयोंसे उपरत (व्यावृत्त) होता हूँ। और किसी भी विषयमें राग द्वेष पर भावोंसे उपशान्त होता हूँ। उपधि निकृति (वंचना) माया (कुटिलता) मृषासे रहित होता हुआ मिथ्या ज्ञान मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्रसे प्रतिविरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमें रुचि करता हूँ। महार्थ, महागुण, महानुभाव, महायश महापुरुषानुचरित इस प्रथम महाव्रत लक्षण प्राणातिपात हानि पर श्रमण होता हूँ। जिन उत्कृष्ट तीर्थंकरोंने प्रणीत आगमसे प्रतिपादित प्राणातिपातसे विरमणस्वरूप यह मेरा महाव्रत अरहंत साक्षिक, सिद्ध साक्षिक साधुसाक्षिक आत्मसाक्षिक परमात्मसाक्षिक और देवता साक्षिक (इन सबकी साक्षीपूर्वक मेरे द्वारा ग्रहण किया गया था) महाव्रत सुव्रत अखण्डित होवे तथा दुस्तर दुःखसे निस्तारक संसार समुद्रसे पार करने वाले वीतराग पालक अथवा संसार समुद्रसे पार प्रापक होनेसे पारग संसार रूप महार्णवसे उतारक और अनन्त चतुष्टयकी प्राप्ति रूप मोक्षका आराधक साधक होवे। इस प्रकारके प्रथम महाव्रतके आरोपण करनेपर सम्पूर्ण अतिचारों (पापों) की विशुद्धिके लिए दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, इस प्रकार काल नियममें जो कोई अतिचार लगा है उस सबकी विशुद्धिमें प्रतिक्रमण करता हूँ। तथा ईर्यापथ स्वरूप केश लोच द्रव्य मार्ग रूप द्रव्य

मर्वं क्र्योंव सम्यघम ि यमम त्रा आई आतचार लगे हुआ है उन सबकी विशुद्धि के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

पहला महाव्रत सब व्रतवारा -भािगयोंके सम्यक्त्वपूर्वक उत्तम अहिंसा अखंड उत्कृष्ट समारूढ तुम्हारे मर हाव।

आहावर विदिए महृद्वदे मन्त भते ! मुसावाद पच्चक्खामि जावज्जीव तिविहेण मणसा वचिया वाएग से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हास्सेण वा भएण वा पदासेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केणवि कारणेण जादेण वा सव्व मय मोस भासेज्ज ण अण्णहि मोस भासाविज्ज अण्णहि मास भासिज्जत पि ण समणुमणिज्ज तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि णिदामि गरहामि अप्पाण, वोस्सरामि पुव्विचरण भते ! ज पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसगदेण मय मोस भासिय अण्णेहि मोस भासाविय अण्णहि मास भासिज्जत पि समणुमण्णिद इमस्स णिग्गथस्स पवयण म अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमलस्स खमाबलस्स अट्ठारससील सहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्स- सियस्स [illegible]

उत्पन्न होनेपर न स्वयं असत्य बोले, न अन्यसे असत्य बुलावे और अन्य स्वयं असत्य बोलता हो तो उसकी अनुमोदना न करे। हे भगवन्! इस द्वितीय महाव्रत सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण (निराकरण, विशुद्धि) करता हूँ। स्व-साक्षी पूर्वक, अपनी निन्दा करता हूँ, पर (गुर्वादि) की साक्षी पूर्वक अपनी गर्हा करता हूँ और हे भगवन्! पूर्वकाल में उपार्जित अतिचार का भी त्याग करता हूँ। जो भी मैंने राग, द्वेष और मोह के वश होकर स्वयं असत्य भाषण किया है, अन्यसे असत्य भाषण कराया है और स्वयं असत्य भाषण करते हुए पर की अनुमोदना की है उस सब का परित्याग करता हूँ।

जो निर्ग्रन्थ रूप है, वह परम पावन है, ज्ञान वैराग्य से युक्त है, महापुरुषों द्वारा कथित आगम में कहा गया है, अनुत्तर है, केवलज्ञान सम्बन्धित, केवली प्रणीत, अहिंसा लक्षण वाला है, सत्यसे अधिष्ठित, विनयका मूल है, क्षमा से उपचित है, अठारह हजार शीलों से परिमण्डित है, चौरासी लाख गुणों से अलङ्कृत है, नवप्रकार ब्रह्मचर्य से सुरक्षित है, निवृत्ति अर्थात् विषयों की व्यावृत्ति लक्षित है, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्याग का फल है, शरीरादि का ममत्व जिसका प्रधान कारण है, परम क्षमाके मार्ग अर्थात् इष्टानिष्ट सम भावका उपदेशक है, मुक्ति अर्थात् समस्त कर्म निर्जरा के मार्ग का प्रकाशक है, सिद्धि अर्थात् परिपूर्ण कर्म निर्जरा या अनन्त चतुष्टय की प्राप्तिका उपाय है, यथाख्यात चारित्र का पथप्रमाण है ऐसे इस (निर्ग्रन्थ) सत्य धर्मका क्रोध मान, माया लोभ अज्ञान अदर्शन, अशक्य असंयम, धर्मके विषयमें अश्रद्धान अप्रतिग्रहण, अविचार अबोध, राग, द्वेष, मोह हास्य, भय, प्रद्वेष, प्रमाद, प्रेम विषयों का अतिगृद्धि, लज्जा गारव आलस्य, अविवेक, कर्मभार, कर्मप्रदेशों का बाहुल्य, कर्म शक्ति का बाहुल्य, कर्मोंकी दुरतिक्रमता, कर्मोंकी अत्यन्त तीव्रता, तीनों गारवों की उत्कटता, अल्पश्रुतता, पारमा

परिचागफनस्स उवसमपहाणस्स खतिमग्गदेसगस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धमग्गपज्जवसाहगस्स सम्मणाण-सम्मदसण सम्मचरित्त च रोचेमि ज जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय राइय पक्खिय—चउमासिय-सवच्छरियइरियावहिकेसलोचाइचारस्स पथादिचारस्स सव्वातिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त च रोचेमि, बिदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमण उवट्ठाणमडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अ हतसक्खिय सिद्धसक्खिय साहुसक्खिय अप्पसक्खिय परसक्खिय देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्मि इद मे महव्वद सुव्वद दढव्वद हादु, णित्थारय पारय तारय आराहिय चावि ते मे भवतु ।

द्वितीय महाव्रत सर्वेषा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत सुव्रत समारूढ त मे भवतु ॥ २ ॥

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरीयाण ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ॥ २ ॥

हे भगवन् अनतर प्रथम महाव्रत म स्थित द्वतीय महाव्रत

म स्थूल और सूक्ष्म सब मृषा जो का जीवन पर्यन्त तीन प्रकार मन वचन और काय म त्याग करता हूँ। इस मृषावाद विरति लक्षण वाले द्वितीय महाव्रत म सति ग्रारव क्रोधसे, मानसे, मायामे लाभसे, रागसे द्वेष से, मोहसे, हास्यसे, भयसे, प्रद्वेष से, प्रमादसे, प्रेमसे, पिपासासे, लज्जासे, गारवसे, अनादरसे और अन्य कारणो के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से

उत्पन्न दोषसे न स्वयं असत्य बोले, न अन्यसे असत्य बुलावे और अन्य स्वयं असत्य बोलता हो तो उसकी अनुमोदना न करे। हे भगवन्! इस द्वितीय महाव्रत सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण (निराकरण, विशुद्धि) करता हूँ। स्व साक्षी पूर्वक, अपनी निन्दा करता हूँ, पर (गुर्वादि) की साक्षी पूर्वक अपनी गर्हा करता हूँ और भगवन्! पूर्वकाल में उपार्जित अतिचार का भी त्याग करता हूँ। जो भी मैंने राग, द्वेष और मोह के वश होकर स्वयं असत्य भाषण किया है, अन्यसे असत्य भाषण कराया है और स्वयं असत्य भाषण करते हुए पर की अनुमोदना की है उस सब का परित्याग करता हूँ।

जो निर्ग्रन्थ रूप है, वह परम पावन है, ज्ञान वैराग्य से युक्त है महापुरुषों द्वारा कथित आगम में कहा गया है, अनुत्तर है, केवलीसे सम्बन्धित, केवली प्रणीत, अहिंसा लक्षण वाला है, सत्यसे अधिष्ठित, विनयका मूल है क्षमा से उपचित है, अठारह हजार शीलों से परिमंडित है, चौरासी लाख गुणों से अलंकृत है, नवप्रकार ब्रह्मचर्य से सुरक्षित है, नियति अर्थात् विषयों की व्यावृत्तिसे लक्षित है, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्याग का फल है, क्रोधादिक का अभाव जिसका प्रधान कारण है, परम शमाके मार्ग अर्थात् इष्टानिष्ट मम भावना उपशामक है, मुक्ति अर्थात् एक देश कर्म निर्जरा के मार्ग का प्रकाशक है, सिद्धि अर्थात् परिपूर्ण कर्म निर्जरा या अनन्त चतुष्टय की प्राप्तिका उपाय है, यथा ख्यात चारित्र का पर्यवसान है, ऐसे इस (निर्ग्रन्थ) सत्य धर्ममें क्रोध, मान, माया, लोभ, अज्ञान, अदर्शन, अवीर्य, असंयम, धर्मके विषयमें अश्रद्धा, अप्रतिग्रहण, अविचार, अबोध, राग, द्वेष, मोह हास्य, भय, प्रद्वेष, प्रमाद, प्रेम विषयों की अतिगृद्धि, लज्जा गारव, आलस्य अविवेक कर्मभार, कर्मप्रदेशों का बाहुल्य, कर्मशक्ति का बाहुल्य, कर्मोंकी दुरतिक्रमता, कर्मोंकी अत्यन्त तीव्रता, तीनों गारवों की उत्कटता, अल्पश्रुतता, पापाग-

थित ज्ञान का अभाव इन सब उक्त कारणों से पूर्व दुश्चरित्र की गुरुसाक्षी पूर्वक गर्हा करता हूँ और प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ, प्रत्युत्पन्न दुश्चरित्र का भी प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ। तथा आगामी अत्यन्त दुश्चरित्र का प्रत्याख्यान द्वारा निराकरण करता हूँ। अनालोचित का आलोचना करता हूँ। अनिन्दित की निन्दा करता हूँ। अगर्हित की गर्हा करता हूँ। अप्रतिक्रान्त का प्रतिक्रमण करता हूँ। रत्नत्रय के विषयम मन, वचन, काय कृत भावेन निरति रूप विराधना को त्यागता हूँ। रत्नत्रय के विषयम निरवद्य मन वचन काय की वृत्ति रूप आराधना का अनुष्ठान करता हूँ। अज्ञान का त्याग करता हूँ। सम्यग्ज्ञान का अनुष्ठान करता हूँ। दर्शन को त्यागता हूँ। मिथ्या चारित्र का व्युत्सर्जन करता हूँ। सम्यक्चारित्र का अनुपालन करता हूँ। सुतप का त्याग करता हूँ। सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। अकरणीय का त्याग करता हूँ। करणीय का अनुष्ठान करता हूँ। अकरण (अनुष्ठान) का त्याग करता हूँ। करण (सानुष्ठान) का अनुष्ठान करता हूँ।

प्राण-व्यपरोपण का त्याग करता हूँ। अभयदान का अनुष्ठान करता हूँ। मृषा (असत्य) का त्याग करता हूँ। सत्य का अनुष्ठान करता हूँ। अदत्त के आदान का त्याग करता हूँ। योग्य दत्त का अनुष्ठान करता हूँ। अब्रह्म का त्याग करता हूँ। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करता हूँ। परिग्रह का त्याग करता हूँ। अपरिग्रह का अनुष्ठान करता हूँ। रात्रि भोजन का त्याग करता हूँ। यथाकाल प्राप्त, प्रासुक, दिवाभोजन का पुनः का अनुष्ठान करता हूँ। चारों आर्त और रौद्र ध्यानों का त्याग करता हूँ। चारों धर्म ध्यानों और चारों शुक्लध्यानों का अनुष्ठान करता हूँ। कृष्ण, नील और कापोत इन तीनों अशुभ लेश्याओं का त्याग करता हूँ। पीत, पद्म और शुक्ल इन तीनों शुभ लेश्याओं का [illegible]न करता हूँ। आरम्भ का त्याग करता हूँ। अनारम्भ का

अनुष्ठान करता हूँ। असयम का त्याग करता हूँ। सयमका अनुष्ठान करता हूँ। सग्रन्थका त्याग करता हू। निर्ग्रन्थका अनुष्ठान करता हू। चेल (वस्त्र) का त्याग करता हूँ। अचेलका अनुष्ठान करता हूँ। अलोच का त्याग करता हूँ। लोचका अनुष्ठान करता हूँ। स्नान का त्याग करता हूँ। अस्नान का अनुष्ठान करता हूँ। अक्षितिशयन का त्याग करता हूँ। क्षितिशयनका अनुष्ठान करता हूँ। दन्तवनका त्याग करता हूँ। अदन्तवनका अनुष्ठान करता हूँ, अस्थिति भोजनका त्याग करता हूँ। एकस्थान स्थिति भोजनका अनुष्ठान करता हूँ। पाणिपात्र भोजन करने का त्याग करता हूँ। पाणिपात्र में भोजन करनेका अनुष्ठान करता हूँ। क्रोधका त्याग करता हूँ। क्षमा धारण करता हूँ। मानका त्याग करता हू। मार्दव धारण करता हू। माया का त्याग करता हू, आर्जव धारण करता हूँ। लोभका त्याग करता हूँ, शौच सन्तोष धारण करता हूँ, कुतप का त्याग करता हूँ। सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ। सम्यक्त्व स्वीकार करता हूँ। कुशील का त्याग करता हूँ। सुशील का पालन करता हूँ। शल्यका परिवर्जन करता हूँ। निःशल्य को अपनाता हू। अविनय का परिवर्जन करता हूँ। विनय का पालन करता हू। अनाचार का परिवर्जन करता हूँ। आचार का पालन करता हूँ। उन्मार्ग का परिवर्जन करता हूँ। सन्मार्ग का स्वीकार करता [redacted]। अशान्ति का परिवर्जन करता हूँ। शान्ति धारण करता हूँ। अगुप्ति का परिवर्जन करता हूँ। गुप्ति का स्वागत करता हू। अमुक्ति का परिवर्जन करता हूँ। मुक्ति का स्वागत करता हूँ। असमाधिका त्याग करता हू। सुसमाधि धारण करता हूँ। ममत्व का त्याग करता हूँ। निर्ममत्व धारण करता हू। अभावित जिनकी भावना नहीं की, उन सम्यग्दर्शनादिक की भावना करता हूँ। जिन मिथ्यादर्शनादिक की भावना भाता रहा हू उनकी भावना का त्याग करता हू। यह वक्ष्यमाण विशेषण से विशिष्ट

थिर क्षा का अभाव इन सब उक्त कारणों से पूर्व दुश्चरित्र की गुरुसाक्षी पूर्वक गर्हा करता हूँ और प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ, प्रत्युत्पन्न दुश्चरित्र का भी प्रतिक्रमण द्वारा निराकरण करता हूँ। तथा आगामी अत्यन्त दुश्चरित्र का प्रत्याख्यान द्वारा निराकरण करता हूँ। अनालोचित की आलोचना करता हूँ। अनिन्दित की निन्दा करता हूँ। अगर्हित की गर्हा करता हूँ। अप्रतिक्रान्त का प्रतिक्रमण करता हूँ। रत्नत्रय के विषयम मन, वचन, काय कृत मार्यम विरति रूप विराधना को त्यागता हूँ। रत्नत्रय के विषयम निर्यम मन वचन काय की वृत्ति रूप आराधना का अनुष्ठान करता हूँ। अज्ञान का त्याग करता हूँ। सम्यग्ज्ञान का अनुष्ठान करता हूँ। सुदर्शन का त्यागता हूँ। मिथ्या चारित्र का व्युत्सर्जन करता हूँ। सम्यक्चारित्र का अनुपालन करता हूँ। कुतप का त्याग करता हूँ। सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। अकरणीय का त्याग करता हूँ। करणीय का अनुष्ठान करता हूँ। अकरण (अनुष्ठान) का त्याग करता हूँ। करण (सानुष्ठान) का अनुष्ठान करता हूँ।

प्राण-व्यपरोपण का त्याग करता हूँ। अभयदान का अनुष्ठान करता हूँ। मृषा (असत्य) का त्याग करता हूँ। सत्य का अनुष्ठान करता हूँ। अदत्त के आदान का त्याग करता हूँ। अचौर्य व्रत का अनुष्ठान करता हूँ। अब्रह्म का त्याग करता हूँ। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करता हूँ। परिग्रह का त्याग करता हूँ। अपरिग्रह का अनुष्ठान करता हूँ। रात्रि भोजन का त्याग करता हूँ। यथाकाल प्राप्त, प्रासुक, दिवाभोजन एक भुक्त का अनुष्ठान करता हूँ। चारों आर्त और रौद्र ध्यानों का त्याग करता हूँ। चारों धर्म ध्यानों और चारों शुक्लध्यानों का अनुष्ठान करता हूँ। कृष्ण नील और कापोत इन तीनों अशुभ लेश्याओं का त्याग करता हूँ। पीत पद्म और शुक्ल इन तीनों शुभ लेश्याओं का
३ करता हूँ। आरम्भ का त्याग करता हूँ। अनारम्भ

अनुष्ठान करता हूँ। असंयम का त्याग करता हूँ। संयमका अनुष्ठान करता हूँ। सग्रन्थका त्याग करता हूँ। निर्ग्रन्थका अनुष्ठान करता हूँ। चेल (वस्त्र) का त्याग करता हूँ। अचेलका अनुष्ठान करता हूँ। अलोच का त्याग करता हूँ। लोचका अनुष्ठान करता हूँ। स्नान का त्याग करता हूँ। अस्नान का अनुष्ठान करता हूँ। अक्षितिशयन का त्याग करता हूँ। क्षितिशयनका अनुष्ठान करता हूँ। दन्तधावनका त्याग करता हूँ। अदन्तधावनका अनुष्ठान करता हूँ। अस्थिति भोजनका त्याग करता हूँ। खड़े होकर स्थिति भोजनका अनुष्ठान करता हूँ। पात्रमें भोजन करने का त्याग करता हूँ। पाणिपात्र में भोजन करनेका अनुष्ठान करता हूँ। क्रोधका त्याग करता हूँ। क्षमा धारण करता हूँ। मानका त्याग करता हूँ। मार्दव धारण करता हूँ। माया का त्याग करता हूँ आर्जव धारण करता हूँ। लोभका त्याग करता हूँ शौच सन्तोष धारण करता हूँ, कुतप का त्याग करता हूँ। सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ। सम्यक्त्व स्वीकार करता हूँ। कुशील का त्याग करता हूँ। सुशील का पालन करता हूँ। शल्यों का परित्याग करता हूँ। निःशल्य को अपनाता हूँ। अविनय का परित्याग करता हूँ। विनय का पालन करता हूँ। अनाचार का परित्याग करता हूँ। आचार का पालन करता हूँ। उन्मार्ग का परित्याग करता हूँ। सन्मार्ग का स्वीकार करता हूँ। अशान्ति का परिवर्जन करता हूँ। शान्ति धारण करता हूँ। अगुप्ति का परिवर्जन करता हूँ। गुप्ति का स्वागत करता हूँ। अमुक्ति का परिवर्जन करता हूँ। मुक्ति का स्वागत करता हूँ। असमाधि का त्याग करता हूँ। सुसमाधि धारण करता हूँ। ममत्व को त्यागता हूँ। निर्ममत्व धारण करता हूँ। अभावित जिनकी भावना नहीं की, उन सम्यग्दर्शनादिक की भावना करता हूँ। जिन मिथ्यादर्शनादिक की भावना भाता [illegible] भावना [illegible]ता हूँ। यह वक्ष्यमाण [illegible]

निर्ग्रन्थ लिंग प्रव्रजन अर्थात् दीक्षाग्रहण रूप है अथवा आगम में मोक्ष का मार्गरूप रूपमें प्रतिपादित है अर्थात् आगममें यह कहा गया है कि यह निर्ग्रन्थ लिंग मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। इस निर्ग्रन्थ लिंग से उत्कृष्ट अन्य कोई लिंग नहीं है, अतः अनुत्तर है। केवली द्वारा प्रणीत है या केवली से सम्बन्ध रखता है। परिपूर्ण है, क्योंकि अयोग केवलीमें यह निःशेष कर्मोंके क्षयका हेतु होने से सम्पूर्ण है। परिपूर्ण रत्नत्रयनिकाय में उत्पन्न हुआ है इस लिए नैकायिक है। परम सामायिकता या मनसावद्य व्यावृत्ति रूप है। निरतिचार है अथवा आलोचनादि प्रायश्चित्तों से विशुद्ध अतः संशुद्ध है, शल्यत्रय से पीडित जीवोंके उन शल्यों का नाशक है। पूर्वोक्त सिद्धिका मार्ग है। पूर्वोक्त श्रेणियोंका मार्ग है, उत्तम क्षमा का कारण है। मुक्ति अर्थात् सर्वसंगके परित्याग का कारण है। अर्हन्तावस्था रूप मोक्ष और सिद्धावस्था रूप प्रमोक्ष का उपाय है। संसार से निकलने का मार्ग है। निर्याण अर्थात् संसारापरम या परमसुख का मार्ग है। सब दुःखोंकी परिहानि का मार्ग है। सुचरित्र के धारक पुरुषों के परिनिर्वाण का मार्ग है। जिस निर्ग्रन्थ लिंग में स्थित मुक्ति के चाहने वाले जीव रत्नत्रयोपलम्भ और लब्धि आदि ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं। जीवादि तत्त्वों का स्वरूप यथावत् जानते हैं सब कर्मोंसे विमुक्त होते हैं, सुखी अथवा कृतकृत्य होते हैं, सब दुःखोंका अन्त करते हैं, पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट उस निर्ग्रन्थ लिंगका मैं श्रद्धान करता हूँ, जानता हूँ, रुचि करता हूँ और अनुष्ठान करता हूँ। इस उक्त प्रकार निर्ग्रन्थ लिंग से उत्कृष्ट मोक्षका साधक अन्य लिंग वर्तमान कालमें नहीं है अतीत कालमें भी इस से उत्कृष्ट कोई नहीं हुआ है। समीपवर्ती वर्तमान कालमें भी नहीं है और आगे अनन्त कालमें भी नहीं होगा।

तात्पर्य है किसी कालमें किसी भी गुणविशेषको लेकर अन्यलिंग
२ निर्ग्रंथ लिंग से उत्कृष्ट नहीं है। उसी गुण विशेष को दिखाने

हुआ पठन है—ध्यान, स्नान, चारित्र सूत्र, आगम अठारह हजार शील, चौरासी लाख गुण तप नियम व्रत विहार आलय आनय लाघव ये सब गुण ऐसा निर्ग्रंथ लिंग समाते हैं। इसलिए इनम और उक्त प्रकार म अन्य किसी प्रकार से इस निर्ग्रंथ लिंग से उत्कृष्ट अन्य लिंग नहीं है न पहले हुआ है और न आगे होगा। इस प्रकार—आप निर्ग्रंथ लिंग म स्थित हुआ मैं श्रमण तपस्वी होता हू प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयम से तत्पर संयत होता हू विषयों म उपरत होता हू। किसी भी विषयम रागद्वेष से रहित उपशान्त होता हू। उपधि निवृत्ति माया और मृषावाद परिहार करता हुआ मिथ्याज्ञान मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र विरत होता हू। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र में रुचि करता हू। जिससे महान मोक्ष लक्षण सब प्राप्त होता है जिसमे महान अनन्त ज्ञानादिगुण होन है जिससे महान दुर्गति म गमन का अभाव होता है य संसार का उच्छेद होता है। तीन भुवन म पूजा के योग्य यह भाग। महात्म्य भण्डार होता है जो महान महापुरुष तीर्थंकर आदि द्वारा अनुष्ठित है, इस प्रकार प्रथम महाव्रतारोपण के होने पर जो कि वीतराग देव द्वारा प्रतिपादित है ऐसा सब प्राणातिपात्य विरमण रूप महाव्रत का अर्हन्त की साक्षी म सिद्धों की साक्षी म साधुसमाज की साक्षी, आत्म साक्षी में परमात्मा म और सब देवताओं की साक्षी से सुव्रत अखण्ड व्रत होवे तथा निरतिचार पालक तारक और आधार होवे।

पहला महाव्रत सब प्राणियों प्राणियां म सम्यक्त्वपूर्वक उत्तम मनरूप दृढ़, अखण्ड व्रत रूप समारूढ़ हुआ मेरे म होवे। इस प्रकार के प्रथम महाव्रत आरोपण करने पर सब अतिचारों की विशुद्धि लिए दैवसिक, रात्रिक पाक्षिक चातुर्मास पर और सांवत्सरिक इस प्रकार कालके नियमम जो कोई अतिचार हुआ है उस मन का विशुद्धपन तथा ईर्यापथ, कायोत्सर्ग, मार्ग इत्यादि

द्रव्यों के सम्बन्ध में मैंने जो कोई अतिचार हुआ है उस सब की विशुद्धि प्रतिक्रमण करता हूँ ।

ग्रहावर तदिये महव्वदे मन्त भंते ! अदत्तादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से दसे वा गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा मडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसणे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवसे वा तिणे वा कट्ठे वा वियडि वा मणि वा मेत्ते वा गले वा जले वा थले वा पहे वा उप्पहे वा रण्णे वा अरण्णे वा णट्ठं वा पमुट्ठं वा पडिदं वा अपडिदं वा सुणिहिदं वा दुण्णिहिदं वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा सचित्तं वा अचित्तं वा मज्झत्थं वा बहित्थं वा अवि दंततरसोहणमित्तं पि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्ज अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि ण समणुमण्णिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि पुव्विचरणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसगदेण सयं अदत्तं गेण्हिदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारस सीलसहस्सपरिमंडियस्स

चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसियस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गप-ज्जवसाहणस्स सम्मणाण सम्मदसण- सम्मचरित्त च रोचेमि, ज जिणवरेहि पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय राइयपक्खिय चउमासिय सवच्छरियअदिचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो इचारस्स सथागदिचारस्स पयादिचारस्स सव्वाइचा-रस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त रोचेमि। तदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमण उवट्ठाणमडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहत-सक्खिय सिद्धसक्खिय साहुसक्खिय अप्पसक्खिय परसक्खिय देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्हि इद मे महव्वद सुव्वद दढव्वद होदु, णित्थारय पारय तारय आराहिय चावि ते मे भवतु ॥ ३ ॥

तृतीय महाव्रत सर्वेषा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत सुव्रत समारूढ ते मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।

णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! द्वितीय सत्य महाव्रत के अनन्तर इसमे अपर तृतीय अचौर्य महाव्रत मे स्थूल और सूक्ष्म अदत्तादानका जीवन पर्यन्त त्रिविध मन, वचन और कायसे प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ। अदत्तादान से विरति स्वरूप इस तृतीय महाव्रत की मुनि की धारितामे सन्निहित—ग्राम, नगर, खेट, खर्वट, मटब, मडल,

पट्टन, द्रोणमुख, घोष, आसन, सभा, संवाह और सन्निवेश, इन जनपदसमूह के आश्रयभूत प्रदेशों में तथा खेत, खलियान, जल, मार्ग, उन्मार्ग और अरण्य इन स्थानोंमें नष्ट, प्रमुष्ट, पतित, अपतित सुनिहित, दुर्निहित, अल्प, बहु, सूक्ष्म, स्थूल, सचित्त, अचित्त, घर में स्थित, घरसे बाहर स्थित और दन्तान्तर शोधनमात्र भी तृण, काष्ठ, विकृति, मणि आदि अल्पमूल्य और बहुमूल्यवान् अदत्त वस्तु न तो स्वयं ग्रहण करें, न अन्यसे ग्रहण कराये और न स्वयं अदत्त ग्रहण करते हुए अन्य की अनुमोदना करें। हे भगवन्! इस तृतीय महाव्रत के अतिचार का त्याग करता हूं। अपनी निन्दा करता हूं, गर्हा करता हूं, और पूर्वकाल में उपार्जित अतिचार का व्युत्सर्जन करता हूं। हे भगवन्! जो मैने रागसे द्वेषसे और मोहके वशीभूत होकर स्वयं अदत्त वस्तु ग्रहण की है अन्यसे अदत्त वस्तु ग्रहण कराई है और अन्य के अदत्त वस्तु ग्रहण करते हुए की अनुमोदना की है उसका भी त्याग करता हूं। जो निर्ग्रन्थ है, प्रवृज्या या प्रवचन में प्रतिपादित है, अनुत्तर है, केवली सम्बन्धी है, केवली प्रणीत है, अहिंसा लक्षण वाला है सत्यसे अधिष्ठित है, विनयका मूल है, क्षमा बल वाला है, अठारह हजार शील के भेदों से परिमंडित है, चौरासी लाखगुणों से विभूषित है, नव ब्रह्मचर्य से रक्षित है, नियति रूपी विषयोंके त्याग से लक्षित है परित्याग का फल है, उपशम प्रधान है शान्तिके मार्ग का उपदेशक है मुक्तिके मार्ग का प्रकाशक है सिद्धि मार्गकी प्राप्ति का साधन है, ऐसे इस निर्ग्रन्थ धर्मका क्रोध, मान, माया लोभ—

(शेष इसका आगे पहले का तरह है)

अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते! अबंभं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया
१८　देविएसु वा माणुसिएसु तिरिच्छिएसु वा

अचेयणिएसु वा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्त-
कम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लयकम्मेसु वा सिल्ला-
कम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा भेदकम्मसु
वा भडकम्मेसु वा धादुकम्मेसु वा दतकम्मेसु वा
हत्थसघट्टणदाए पादसघट्टणदाए पुग्गलसघट्टणदाए
मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु मणु-
ण्णामणुण्णेसु गधेसु मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु मणुण्णाम-
णुण्णेसु फासेसु सोदिदियपरिणामे चक्खिदियपरिणामे
घाणिंदियपरिणामे जिब्भिदियपरिणाम फासिदिय-
परिणामे णोइ दियपरिणामे अगुत्ते ण अगुत्तिदिएण
णेव सयं अबभ सेविज्ज णो अण्णेहिं अबभ
सेवाविज्ज णो अण्णेहिं अबभ सेविज्जत
पि समणुमणिज्ज तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि
णिदामि गरहामि अप्पाण, वोस्सरामि पुव्विचण्ण भत !
जपि मए रागस्स वा दोसस्स वा वसगदेण सय अबभ
सेविय अण्णेहिं अबभ सेवाविय अण्णेहिं अबभ
सेविज्जत पि समणुमणिद त पि इमस्स णिग्गथस्स
पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स
अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स
खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमडियस्स चउरासी-
दिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवबभचेरगुत्तस्स
णियदि परिचागफलस्स

खतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्ग ज-
वसाहणस्स , सम्मणाणसम्मदसण-सम्मचरित्त
च रोचेमि, ज जिणवरेहि पण्णत्तो इत्थ जो मए
देवसिए-राइय पक्खि चउमासिय संवच्छरिय इरिया-
वहिकेसलोचाइचारस्स सथारादिचारस्स पथादिचारस्स
सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त च रोचेमि।
चउत्थे महव्वदे अबभादो वेरमण उवट्ठावणमडले
महत्थे। महागुण महाणुभावे महाजस महापुरिसाणु-
चिण्ण अरहतसक्खिय सिद्धसक्खिय साहुसक्खिय
अप्पसक्खिय परसक्खिय देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्हि
इद मे महव्वद सुव्वद दिढव्वद होदु णित्थारय पारय
तारय आरहिय चावि ते मे भवतु ॥ ३ ॥

चतुर्थं महाव्रत सर्वेषा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक
दृढव्रत सुव्रत समारूढ ते मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ॥ ३ ॥

हे भगवन्! तृतीय महाव्रत अनन्तर चौथे महाव्रतमे सब चेतन और अचेतन अब्रह्म (कुशील) का प्रत्याख्यान करता हूँ। उस चतुर्थ महाव्रत के विनाश के कारण देवी, मानुषी और तिरश्चीन चेतन स्त्रियो के अग उपागाम तथा काष्ठ निर्मित, पत्थर निर्मित, लेप अर्थात् (पुत्तलिकादि) मूर्तिका निर्मित लयन पत्थर भित्तिपर निर्मित, कैंची आदि से वस्त्र आदिको कतर कर ... गजदन्त पर उकेर कर निर्मित देवी आदि के अचेतन

स्पर्शादि से हाथों का संघर्षण, पैरोंका संघर्षण शरीर के अन्य अवयवों का संघर्षण होने पर श्रोत्र इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्त्री आदि के शब्दों में श्रोत्र इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम, चक्षुरिन्द्रिय के विषय मनोज्ञ अमनोज्ञ स्त्री के रूपों में चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम, नासिका इन्द्रियके विषय मनोज्ञ अमनोज्ञ स्त्रियों के गंध में नासिका इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम, रसना इन्द्रिय के विषय रमणीय अरमणीय स्त्रियोंके वदन स्वादि में जिह्वा इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम, स्पर्शन इन्द्रिय के विषय मनोहर अमनोहर स्त्रियों के स्पर्श में स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी विकृत परिणाम और अनियत विषय नो-इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम होनेपर न स्वयं अब्रह्म सेवन करूं, न अन्यसे अब्रह्म सेवन कराऊं और न अन्य द्वारा स्वयं अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना करूं।

हे भगवन्! इस चतुर्थ महाव्रत के अतिचार का निराकरण करता हूं। निन्दा करता हूं। और अपनी गर्हा करता हूं। पुरातन (भूत कालीन) अतिचार का व्युत्सर्जन करता हूं। हे भगवन्! जो भी मैंने राग द्वेष और मोहके वशीभूत हो कर स्वयं अब्रह्म सेवन किया है, अन्य से अब्रह्म सेवन कराया है, अन्य से अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना की है। उसका भी त्याग करता हूं।

ऊपर विशेषणोंसे विशिष्ट निग्रंथ धर्मका बोध आदि—
(आगेका शेष विषय पहलेके समान है।)

आधावरे पंचमे महव्वदे सव्वदे सव्वं भंते! दुविहं परिग्गहं पच्चक्खामि तिविहेण मणसा वचिया काएण। सो परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भिंतरं परिग्गहं—"मिच्छत्तवेयराया तहेव हस्सादिया

य छद्दासा। चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भतर गंथा ॥ १ ॥" तत्थ बाहिर परिग्गह, से हिरण्ण वा सुवण्ण वा धण वा खेत्त वा खल वा वत्थु वा पवत्थु वा कोस वा कुठार वा पुर वा अंतउरं वा बल वा वाहण वा सयड वा जाण वा जंपाण वा जुग वा गद्दिय वा रह वा सदण वा सिविय वा दासीदासगोमहिसगवेडय मणि-मोत्तियसंखसिप्पिपवालय मणिभाजण वा सुवण्णभाजण वा रजतभाजण वा कंसभाजण वा लोहभाजण वा तंबभाजण वा अंडज वा वोडज रोमज वक्कज वा वम्मज वा अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा सचित्त वा अचित्त वा अमुत्थ वा बहित्थ वा अवि वालग्गकोडिमित्तपि णेव सयं असमणपाउग्ग परिग्गह गिण्हिज्जरा अण्णेहि असमणपाउग्ग परिग्गह गेण्हाविज्ज णो अण्णेहि असमणपाउग्ग परिग्गह गिण्हज्जतपि समणुमणिज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिदामि गरहामि अप्पाण, वोस्सरामि पुव्विचरण भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसगदेण सयं असमणपाउग्ग परिग्गह गिण्हिज्ज, अण्णेहिं असमणपाउग्ग परिग्गह गेण्हाविय, अण्णेहि असमणपाउग्ग परिग्गह गेण्हिज्जत पि समणुमण्णिद त पि इमस्स णिग्गथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलि-

यस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खण
सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठार
सीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीगुणसयसहस्सविहू
सियस्स णवबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स
परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खतिमग्गदेसयस्स
मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स
सम्मणाण-सम्मदसणसम्मचरित्त च रोचेमि, ज
जिणवरहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय राइय-
पक्खिय-चउमासिय सवच्छरिय इरियावहियसीलाचार-
चारस्स सयणादचारस्स पथादचारस्स सव्वादचारस्स
उत्तमट्ठस्स सम्मचारित्त रोचेमि । पचम महव्वद परि-
ग्गहादो वेरमण उवट्ठावणमडल महत्थे महागुण महा-
णुभाव महापुरिसाणुचिण्ण अरहतसक्खिय सिद्ध-
सक्खिय साहुसक्खिय अप्पसक्खिय परसक्खिय
देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्हि इद मे महव्वद सुव्वद
दिढव्वद होदु, णित्थारय पारय तारय आराहिय चारि
ते मे भवतु ॥ ३ ॥

पचम महाव्रत सर्वेषा व्रतधारिणा
व्रत समास्त त मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहताण ... ण णमो
णमो ...
लोए स...

चतुर्थ महाव्रतके अनन्तर अन्य पंचम महाव्रत में हे भगवन्! सब द्विविध परिग्रह का त्रिविध मन, वचन और कायसे प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूं। वह परिग्रह दो प्रकार का है आभ्यन्तर और बाह्य। उनमें मिथ्यात्व तीन वेदराग, छह हास्यादिक दोष, और चार कषाय ये चौदह आभ्यन्तर परिग्रह हैं। तथा द्विविध परिग्रह में ये बाह्य परिग्रह हैं हिरण्य सुवर्ण रूप्यादि धन, व्रीही आदि धान्य सस्य का उत्पत्ति स्थान क्षेत्र, खलियान वास्तु प्रवास्तु कोश (भाडागार) कुठार, पुर अन्त पुर, हस्ती अश्व, रथ, पदाति यह चतुरंग सैन्य बल हस्ती अश्व आदि वाहन, शकट (बैलगाड़ी) यान (पालकी) युग्य, जपा[illegible] [illegible], रथ,

आवावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते ! राईभोयण पच्चक्खामि जावज्जीव तिविहेण मणसा वचिया काएण, से असणं वा पाणं वा खादियं वा सादियं वा कडुय वा कसाय वा आमिलं वा महुर वा लवण वा अलवण वा सचित्त वा अचित्त वा त सव्वं चउव्विहं आहारं णेव सय रत्ति भुंजिज्ज णो अण्णेहिं रत्ति भुंजाविज्ज णो अण्णेहिं रत्ति भुंजिज्जंत पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचिण भंते ! ज पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसगदेण चउव्विहो आहारो सयं रत्ति भुत्तो अण्णेहिं रत्ति भुंजाविदो अण्णेहिं रत्ति भुंजिज्जंतो वि समणुमण्णिदो, त पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलि, पण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खण स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उपसमपहाणस्स खतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धमग्गपज्जवसाहणस्स सम्मणाण सम्मदसणसम्मचरित्त च रोचेमि ज जिणवरेहिं य

जो मए देवसियअइचार पडिक्कमण-च...
इरियावहि ... यारस्स सवा...

दिवारम्भ सव्वाइवारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त च रोचेमि, छट्ठे अणुव्वदे राईभोयणादो वेरमण उवट्ठावणमडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्ण अरहतसक्खिय साहुसक्खिय परसक्खिय देवतासक्खिय उत्तमट्ठम्हि इद मे अणुव्वद सुव्वद दिढव्वद होदु णित्थारय पारय तारय आराहिय चावि ते मे भवतु ॥ ३ ॥

पष्ठ अणुव्रत सर्वथा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत समारूढ ते मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरीयाण ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्व साहूण ॥३॥

छठ अणुव्रतमें हे भगवन ! सब रात्रिभोजन का त्रिविध मन वचन काय स प्रत्याख्यान करता हू । उस रात्रिभोजन विरमण नामक छठे अणुव्रत की अतिर धारण अशन, पान खाद्य, स्वाद्य, कटुक कषाय आमिल मधुर, लवण, अलवण, सचित्त और अचित्त इस सम्पूर्ण चतुर्विध आहार का मैं
नहीं खाऊगा न अन्य स रात्रिम खिलाऊ
मैं खाते हुए का भी अनुमोदन करूगा
हे भगवन् ! रात्रिभोजन त्याग न
धारणा प्रतिक्रमण करता हू
करता ह । जो भी मैंने
आहार रात्रिम स्वय खाया
और अन्य स स्वय रात्रि म
। भी नन करता।

चूलिका

चूलियंतु पवक्खामि भावणा पचविसदी।
पच पच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे ॥ १ ॥
मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया-कायसंयदो।
एसणासमिदिसजुत्तो पढमं वदमस्सिदो ॥ २ ॥
अकोहणो अलोहो य भयहस्सविवज्जिदो।
अणुवीचिभासकुसलो विदियं वदमस्सिदो ॥ ३ ॥
अदेहणं भावणं चावि उग्गहं या परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु तिदियं वदमस्सिदो ॥ ४ ॥
इत्थिकहा इत्थिसंसग्गहासखेडपलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य चउत्थं वदमस्सिदो
सचित्ताचित्तदव्वेसु वज्झब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो पचमं वदमस्सिदो ॥ ६ ॥
धिदिमंतो खमाजुत्तो झाणजोगपरिट्ठिदो।
परीसहाणउर देंतो उत्तमं वदमस्सिदो ॥ ७ ॥
जो सारो सव्वसारेसु सो सारो एस गोयम।
सारं झाणंपि णामेण सव्व बुद्धेहिं देसिद ॥ ८ ॥

इच्चेदाणि पंचमहव्वयाणि राईभोयणादो वेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउग्गपदाणि सउत्तरपदाणि सम्मं धम्मं अणुपालइत्ता समणा भयवंता णिग्गथादोओण सिज्झंति वुज्झंति मुच्चंति परि-
[illegible] णिव्वाणमंतं करेंति परिविज्जाणन्ति

उक्त और अनुक्त अर्थ का चिन्ता करना चूलिका है। उसको अब कहता हैं। उसमें पच्चीस भावनाएं हैं। जो कि एक एक महाव्रत म पाच पाच स्वीकार का गइ हैं ॥१॥

मनसे गुप्त, वचनसे गुप्त, गमन करते समय काय से प्राणियों की पीडा क परिहार में तत्पर तथा एषणा समितिमें संयुक्त होता हू। अन्यत्र भावना यही गइ हैं यहा इन भावनाओंमें सहित व्यक्ति कहा गया है। जो कि अभिन्न होनेसे भावना ही है। क्योंकि भाव नाओं से युक्त व्यक्ति के ही अहिंसा व्रत निर्मल होता है ॥२॥

क्रोधसे रहित, लोभसे रहित, भयसे वर्जित हास्य से वर्जित और आगमानुकूल बोलने म कुशल होउ। ये पाच सत्य महाव्रत की भावनाएं हैं। इनसे युक्त के सत्यमहाव्रत निर्मल होता है ॥३॥

तृतीय अचौर्य व्रत को आश्रित से पाच भावनाओं में तत्पर होता हूँ। वे भावनाएं ये हैं। अदत्तन अर्थात् जो मैंने देहका उपादन किया है, वह ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नहीं है। ऐसी भावना भाता हूँ। यहा उपादेयानि इत्यादि वाक्य स ध का लोप होकर अदेहवन के स्थान म अदेहन बन गया है। देहमें ही अशुचित्व अनित्यत्व आदि भावना है उससे भी भाता हूँ। परिग्रह म अनाग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना भाता हूँ। भक्त, पान, आदि चतुर्विध आहार म म तुष्ट अर्थात् गृद्धि रहित होता हूँ। इन भावनाओं को भाने वाले के तीसरा महाव्रत निर्मल होता है ॥४॥

मैथुन से विरति लक्षण चतुर्थ महाव्रत को म आश्रित हुआ हैं मैं स्त्री कथा, स्त्रीसंसर्ग, स्त्रियोंके साथ हास्य विनोद स्त्रियों के साथ क्रीडन, और उनके मुखादि अगोका रागभावसे अवलोकन इन सब ब्रह्मचर्यके विघातको में चूकि नियममें स्थित हूँ इसलिए निवृत्त होता हूँ। इन भावनाओंसे चतुर्थ व्रत निर्मल होता है ॥५॥

परिग्रह से विरति लक्षण पचम व्रताश्रित मैं, ऐसी आस तथा

वस्त्र आभरण आदि बाह्य द्रव्यमें और ज्ञानावरणादि आभ्यन्तर द्रव्यमें तथा गृह क्षेत्र आदि अन्य सब परिग्रहसे विरत होता हूँ। इस प्रकार की पांच भावनाओं का भान काल के परिग्रह विरति व्रत निर्मल ठहरता है। (ये पांचों व्रत प्रतिज्ञारूप हैं। क्योंकि अभिप्राय पूर्वक किया हुआ नियम व्रत होता है ऐसा कहा गया है) ॥६॥

उत्तम व्रत (प्रतिज्ञा) आश्रित वही होता है जो धृतिमान्, सन्तुष्ट इस लोक और परलोककी आकांक्षा से रहित है, उत्तम क्षमायुक्त है ध्यानयोग में सब भार से स्थित है और परीषहों को सहन करता है ॥७॥

जगन्तवर्ती सब वस्तुओं में सार व्रत हैं उनमें सार है गौतम! ध्यान है क्योंकि 'सार ध्यान' इस नामसे सब गुणों (समता) को ध्यानको सार कहा है। इस प्रकार भावनाओं सहित, अष्ट प्रवचनमातृकाओं सहित और उत्तर पदों सहित रात्रिभोजन से निरमण षष्ठ ये पांच महाव्रत हैं। जो सम्यक् धर्म हैं इनका अनुपालन कर श्रमण निर्ग्रन्थपन से सिद्ध स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त होते हैं, हेयोपादेय विवेक से सम्पन्न बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं संसारसे पार होते हैं सब दुःखोंका अन्त करते हैं और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।

तं जहा—

पाणादिवाद चहि मोसग च अदत्तमेहुण्णपरिग्गह च ।
वदाणि सम्म अणुपालइत्ता णिव्वाणमग्ग विरदा उवेंति
जाणि काणि वि सल्लाणि गरहिदाणि जिणसासणे ।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता णिसल्लो विहरदे सया मुणी ॥
उप्पण्णाणुप्पण्णा माया अणुपुव्व सो णिहन्तव्वा ।

पडिक्कमण ॥ ३ ॥

अब्भुट्ठिदकरणदाए अब्भुट्ठिददुक्कडणिराकरणदाए ।
भव भावपडिक्कमणं सेसा पुण दव्वदो भणिदा ॥४॥
एसो पडिकमणविही पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
सजमतवट्ठिदाणं णिग्गथाणं महरिसीणं ॥ ५ ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं भवे एत्थ ।
तं खमउ णाणदेवय ! देउ समाहिं च बोहिं च ॥६॥
काऊण णमोक्कार अरहताण तहेव सिद्धाणं ।
आइरिय-उवज्झायाणं लोयम्मि य सव्वसाहूणं ॥७॥

प्राणातिपात (हिंसा), मृषा, अदत्तग्रहण, मैथुन और परिग्रह इन पापोंका त्याग कर और इनसे विपरीत व्रतो का अनुपालन कर विरत मुनि निर्वाण के मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥१॥

जिन शासन में जो कोई भी मिथ्यात्वादि व क्रोधादि शल्य गर्हित कहे गये हैं उन सबको त्याग कर निःशल्य होते हुए मुनि अनंतकाल विहार करते हैं ॥ ॥

मन, वचन और कायकी कुटिलता का नाम माया है । उत्पन्न किंवा अनुत्पन्न उभय प्रकार की मायाको मुनिजन क्रमशः आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हणता धारणा से हनन (नाश) करें । तात्पर्य यह जो माया जब जब उत्पन्न हो तब तब उस उस माया का उक्त कारणोंसे विनाश किया जाय ॥३॥

जिस कालमें माया उत्पन्न हो उसी कालमें उसका आलोचना आदि द्वारा हनन करना चाहिए । यह भाव प्रतिक्रमण कहा गया है । क्योंकि भावका अर्थात् माया परिणति का ही निराकरण होता है, इसलिए भाव प्रतिक्रमण है । अवशिष्ट शब्दोच्चारण मात्र रूप द्रव्यप्रतिक्रमण है ॥४॥

पण्णत्ता अरहन्तेहिं भयवन्तेहिं तित्थयरेहिं आइरियेहिं तिलोगणाहेहिं तिलोगबुद्धेहिं तिलोगदरसीहिं त सद्दहामि ते पत्तियामि ते रोचेमि ते फासेमि, ते सद्दहन्तस्स त पत्तियन्तस्स ते रोचयन्तस्स ते फासयन्तस्स जो मए देवसिओ राईओ पक्खिओ संवच्छरिओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो अणारो सज्झाओ पओवाले वा परिहाविदो अत्थाक्किद मिच्छामेलिद वा मेलिद अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छिद आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

णमो अरहन्ताणं इत्यादि पञ्चनमस्कारपद, अर्हन्तपद, सिद्धपद, आचार्यपद, उपाध्यायपद, साधुपद, चत्तारिमंगलं इत्यादि मंगल पद, चत्तारि लोगुत्तमा इत्यादि लोकोत्तमपद, चत्तारिसरणं पव्वज्जामि इत्यादि शरण पद, करेमि भंते ! सामाइयं इत्यादि सामायिकपद, उसहमजियं च वंदे इत्यादि चतुर्विंशति तीर्थंकरपद, सिद्धानुद्धूत इत्यादि और जयति भगवान् इत्यादि वन्दनापद, पडिक्कमामि भंते इत्यादि प्रतिक्रमणपद, भंते पच्चक्खामि इत्यादि प्रत्याख्यानपद, नवसंख्या प्रमाण पचनमस्कारका उच्चारण लक्षण, तथा अठारह सत्ताईस छत्तीस, एकसौ आठ इत्यादि संख्या लक्षण कायोत्सर्गपद, असहिय णिसहियपद इन सब पदों में अत्यासादना होनेपर तथा आचारांग अगपद, अगांके अधिकारपद, संख्या आदि अगांगपद, उत्पाद पूर्वादि पूर्वांग, वस्तु प्रभृति पूर्व पूर्वांग, प्रकीर्णक प्राभृत, प्राभृतप्राभृत, पूर्वकृत पडावश्यकादि कर्म अथवा शुभ और अशुभ मन वचन और कायके ... बन्धन पुण्य पापकर्म रूप कृतकर्म, भूत,

अविरमार और वतमान म उस पदावदव कमे इन उत्त मब में उत्पन्न दोष का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। तथा ज्ञान की अत्यासादना, दर्शन की अत्यासादना, चारित्रकी अत्यासादना तपकी अत्यासादना और वीर्य की अत्यासादना सम्बन्धी दोषका प्रतिक्रमण करता हूँ। तथा अनन्त नार्थंकरों के गुणोंका वर्णन करने वाले स्तवामें एक तीर्थंकर के गुण वर्णन करने वाली स्तुतियां मे चरित पुराण प्रतिपद अर्थात् चारों म रणानुयोगादि अनियोगामें और छतिवेदनादि चौबीस अनियोगद्वारों में अक्षरहीन, पदहीन, स्वरहीन, अर्थहीन और ग्रन्थहीन दोष का प्रतिक्रमण करनेकी इच्छा करता हूँ। अर्हन्त, भगवान् तीर्थंकर, जिनानन्दायन जो जीवादि पदार्थ आगमम प्रतिपादन किये हैं उनका श्रद्धान करता हूँ, प्राप्त करता हूँ, रुचि करता हूँ विश्वास करता हूँ। उनका श्रद्धान करने वाले, प्राप्त करने वाले रुचि करने वाले विश्वास करने वाले जो मेरे दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक चातुर्मासिक, सवत्सरिक अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग दोष लगा, अकालमें स्वाध्याय किया, स्वाध्याय कालम स्वाध्याय नहीं किया सहसा किया, बिना विचार जल्दी जल्दी उच्चारण किया, मिथ्या अविनयादिक साथ मिलाया, अन्य अक्षरका अन्य अक्षरके साथ जोड़ कर पढ़ा, उच्चध्वनि-युक्तको नीच ध्वनि से और नीचध्वनि युक्त पाठको उच्चध्वनिसे पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया या सुना, आवश्यको म परिहीनता की इन सब दोषोंस उत्पन्न मेरा दुष्कृत मिथ्या होव।

अह पडिवादाए विदिए तदिए चउत्थीए पञ्चमीए छट्ठीए सत्तमीए अट्ठमीए णवमीए दसमीए एयारसीए बारसीए ... पुण्णमासीए ...

दिवसाए पण्णरसराईए, छउण्ह मासाए अट्ठण्ह पक्खाए वीसुत्तरसय दिवसाए वीसुत्तरसय राईए, बारसण्ह मासाए चउवीसण्ह पक्खाए तिण्ह छावट्ठि-सयदिवसाए तिण्ह छावट्ठिसयराईए, पचवरिसादा परदा अब्भितरदो वा दोण्ह अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाए तिण्ह अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामाए तिण्ह दडाए तिण्ह लेस्साए तिण्ह गुत्तीए तिण्ह गारवाए तिण्ह सल्लाए चउण्ह सण्णाए चउण्ह कसायाए चउण्ह उवसग्गाए पचण्ह महव्वयाए पचण्ह इंदियाए पञ्चण्ह समिदीए पञ्चण्ह चरित्ताए छण्ह आवासयाए सत्तण्ह भयाए सत्तविहसमाराए अट्ठण्ह मयाए अट्ठण्ह सुद्धीए अट्ठण्ह कम्माए अट्ठण्ह पवयणमाउयाए णवण्ह बभचेरगुत्तीए णवण्ह णोकसायाए दसविहमुडाए दसविहसमणधम्माए दसविहधम्मज्झाणाए बारस सजमाए बारसण्ह तवाए बारसण्ह अगाए तेरस किरियाए चउदसण्ह पुव्वाण्ह पण्णरसण्ह पमायाए मोलसण्ह कसायाए पणवीसाए किरियासु पणवीसाए भावणासु बावीसाए परिसहेसु अट्ठारसीलसहस्सेसु चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु अदिक्कम्मो वदिक्कम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि पडिक्कमत मदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुम-

णिाद तस्स भंते ! अइचार पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि जाव अरहंताणं भय-वंताणं णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव काय पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

प्रतिपदा द्वितीया तृतीया चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी एकादशी द्वादशी त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन पन्द्रह दिनों में एक पक्ष के पन्द्रह दिन और पन्द्रह रात्रि, चारमास के आठ पक्ष एक सौ बीस दिन और एक सौ बीस रात्रि तथा एक वर्ष के बारह मास, चौबीस पक्ष, तीनसौ छयासठ दिन और तीनसौ छयासठ रात्रि तथा युगप्रतिक्रमण के पांच वर्ष में पूरे और भीतर पूर्वोक्त आर्त्तरौद्रध्यान रूप संक्लेश परिणाम, माया मिथ्या और निदान रूप अप्रशस्त संक्लेश परिणाम अप्रशस्त मन वचन और काय नामक तीन दंड, कृष्ण, नील और कापोत तीन अशुभलेश्या, तीन गुप्ति तीन गारव, तीन शल्य, चार संज्ञा, चारकषाय, चार उपसर्ग, पांच प्रत्यय, पांच इन्द्रिय, पांच समिति पांच चारित्र, छह आवश्यक, सात भय, सात विध संसार, आठ मद, आठ शुद्धि आठ कर्म, आठ प्रव चन मातृका नव ब्रह्मचर्य गुप्ति नव नोकषाय दश मुंड, दश श्रमण धर्म दशधर्मध्यान, बारह संयम बारह तप, बारह अंग, तेरह क्रिया, चौदह पूर्व, पन्द्रह प्रमाद सोलह कषाय, पच्चीस क्रिया, पच्चीस भावना, बाईस परीषह, अठारह हजार शील, चौरासी लाख गुण, मूलगुण और उत्तर गुण ये जितने [illegible] आचरण ऐसे हैं जो त्यागन योग्य हैं और जितने ही आचरण ऐसे हैं जो पालन योग्य हैं, त्यागन योग्य का पालन किया और पालन योग्य

का पालन नहीं किया, [illegible] विकथा और [illegible] स्वरूप आचरण में अतिक्रम (मन की शुद्धता की हानि) व्यतिक्रम (विषय सेवन की अभिलाषा) अतिचार ([illegible] का उल्लंघन [illegible]) अनाचार (प्रयोग) आभोग ([illegible]) [illegible] में अति [illegible] से अनुष्ठान करना) और [illegible] आदि [illegible] इस प्रकार [illegible] पर अनुष्ठान करना) से [illegible] हे भगवन्! इस अतिचार (पाप) का प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा करता हूँ गर्हा करता हूँ दूर [illegible] छोड़ता हूँ। जब तक भगवन्त अरहन्तों को नमस्कार करता हूँ, पर्युपासना करता हूँ तब तक पापरूप स्वरूप और दुश्चरित्र रूप काय का ममत्व त्यागता हूँ।

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हणा सव्वलोयदरसिणा सावयाणं सावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोसपरदारागमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकदपरिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

हे आयुष्मानो ! गौतम (गौतम) इत्यादिरूप आज्ञा सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर के शासन में श्रावकों, श्राविकाओं और ... के वास्ते में पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह बारह प्रकार गृहस्थ धर्म कहा है। उनमें ये पाँच अणुव्रत हैं—पहले अणुव्रत में स्थूल प्राणातिपात से विरमण है, दूसरे अणुव्रत में स्थूल मृषावाद से विरमण है तीसरे अणुव्रत में स्थूल अदत्तादान से विरमण है और चौथे अणुव्रत में स्वदार सन्तोष है तथा परदार गमन से विरमण है और पाँचवें अणुव्रत में स्थूल इच्छा परिमाण है ये पाँच अणुव्रत हैं।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं बिदिए गुणव्वदे विविधअणत्थदंडादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोगपरिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

उनमें ये तीन गुणव्रत हैं उनमें पहला गुणव्रत दिशा और विदिशाओं का प्रत्याख्यान है, दूसरे गुणव्रत में विविध अनर्थदंडों से विरमण है और तीसरे गुणव्रत में भोग और उपभोग वस्तुओं का परिसंख्यान है ये तीन गुणव्रत हैं।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं बिदिए पोसहोवासयं, तदिए अतिथिसंविभागो चउत्थे सिक्खावदे पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

उनमें ये चार शिक्षाव्रत हैं उनमें पहले में सामायिक दूसरे में प्रोषधोपवास, तीसरे में अतिथि संविभाग और चौथे शिक्षाव्रत

म अन्तिम सल्लेखना-पूर्वक मरण और तीसरा अभावनाश था है।

से अभिमदजीवाजीव-उवलद्धपुण्णपाव आसव-बधसवरणिज्जर-मोक्खमहिकुसले धम्माणुरायरत्तो पि माणुरागरत्तो अट्ठिमज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे।

णिस्सकियणिक्कखिय णिव्विदिगिछो य अमूढदिट्ठी य
उवगूहण ट्ठिदिकरणं वच्छल्लपहावणा य ते अट्ठ ॥१॥

निःशकित, निष्काक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थिति करण, वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अग है।

सव्वेदाणि पचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि वारसविह गिहत्थधम्ममणुपालइत्ता।

दसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य।
बभारभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ।१।

सब ये पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत मिलकर बारह प्रकार गृहस्थ धर्मका अनुपालन कर दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त विरमण, रात्रिभक्त विरमण, ब्रह्मचर्य, आरभ निवृत्ति, परिग्रह विरति, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग ये देशव्रत के ग्यारह स्थान हैं।

महुमसमज्जजूआ वेसादिविवज्जणासीलो।
पचाणुव्वयजुत्तो सत्तेहि सिक्खावएहि सपुण्णो २

मधु मास, मद्य, जूआ वेश्या-गमन इन का त्याग। पाच अणुव्रतों से और सात शीलों से परिपूर्ण श्रावक होता है।

जो एदाइ वदाइ धरइ सावया सवियाओ वा खुड्ढय खुड्डियाओ व अट्ठदह भवणवासियवाणवितर-जोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्ताउवरिम-अण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जति।

जो श्रावक श्राविका क्षुल्लक और क्षुल्लिका इन व्रतो को धारण करते हैं व दश भवनवासी, आठ वाण व्यन्तर, पाच ज्योतिषी और सौ धर्म ईशान स्वर्ग की देवियो का व्यतिक्रम कर उपरिम अन्यतर महर्द्धिक देवाम उत्पन्न होते हैं।

त जहा– सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबभबभु-त्तरलातवकापिट्ठसुक्कमहासुक्कसतारसहस्सारआणतपा-णतआरणअच्चुतकप्पेसु उववज्जति,

यथा बताते हैं —सौ धर्म ईशान कल्प सनत्कुमार-महेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ट कल्प, शुक्र महाशुक्र कल्प, सतार सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प मे उपजते हैं।

अडयवरसत्थधरा कडयङ्गदबद्धउडकयसोहा।
भासुरवरबोहिधरा देवा य महड्ढिया होति॥ ॥

उक्कस्सेण दोतिण्णभवगहणाणि जहण्णे सत्तट्ठभवगहणाणि तदो समणुसुत्तादो सुदेवत्त सुदेव-त्तादो सुमाणुसत्त तदो साइहत्था पच्छा णिग्गथा होऊण सिज्झति बुज्झति मुचति परिणिव्वाणयति सव्वदुक्खाणमत करेति। जाव अरहताण भयवताण

णमोक्कार करमि पज्जुवास करेमि ताव काय पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि ।

ऐसे नैर्ग्रन्थपने के धारक महर्द्धिक देव होते हैं । नैर्ग्रन्थपने में दो तीन भव ग्रहण करते हैं । जघन्य से सात आठ भव ग्रहण करते हैं । पश्चात् वे सुमनुष्यत्व से सुदेवत्व और सुदेवत्व से सुमनुष्यत्व को उससे साहत्थ पश्चात् निर्ग्रन्थ मुनि होकर सिद्ध, होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं । मैं जब तक अर्हन्त भगवानों को नमस्कार करता हूँ पर्युपासन करता हूँ तब तक पापापानैक दुश्चरित्र कायका व्युत्सर्जन करता हूँ ।

(अनन्तर साधव "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकं पठित्वा सूरिणा सहिता 'वदसमिदि दयरोधो' इत्यादिकं चाधीत्य वीरस्तुतिं कुर्युः)

(अनन्तर साधु "थोस्सामि" इत्यादि दण्डक पढ़कर आचार्य के साथ वदसमिदिन्दियरोधो इत्यादि पढ़कर वीर स्तुति करें)

वीरभक्तिः

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं यथोक्तानुच्छ्वासान् ३०० कृत्वा 'थोस्सामि' इत्यादिदण्डकं पठित्वा 'चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं' इत्यादि स्वयम्भुव 'या सर्वाणि

वराग्गीर्ति इत्यादि सारभक्ति नातिका पढ़िया चन्द्रमसि दिदियसा ॥ इत्यादि पढ़ै । अथवा—)

(इस प्रकार उच्चारण कर 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दण्डक पढ़कर यथोक्त २७ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करके 'थोस्सामि' इत्यादि स्तव पढ़े । फिर चन्द्रप्रभ चन्द्रमरीचिगौर इत्यादि स्तव पढ़कर 'सर्वाणि चराचराणि' इत्यादि अञ्चलिका युक्त चारभक्ति पढ़कर चन्द्रमसि दिदियसा इत्यादि पढ़े)

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् १
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेशभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् २
स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवु
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केसरिणो निनाद
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः ।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समन्तदुःखक्षयशासनश्च ४
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः ।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे

चन्द्रमाकी किरणोंके समान शुक्ल जगतमें दूसरे चन्द्रमा, महान् इन्द्रादि द्वारा अभिवन्द्य ऋषियोंके स्वामी, जिनने अपने आभ्यन्तर क्रोधादि कषाय बन्ध जीत लिया है ऐसे अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभजिनको वन्दना करता हूं ॥१॥

जिस प्रकार सूर्यकी किरणों से अन्धकार छिन्न भिन्न होकर नाश को प्राप्त होजाता है उसी प्रकार भगवान् चन्द्रप्रभ के शरीरकी प्रकृष्ट कांतिके मंडल से बाह्य अन्धकार और ध्यान

रूप दीपक के अतिशय (प्रकाश) से ज्ञानावरण के उदय से उत्पन्न अनन्त प्रकार का आभ्यन्तर अज्ञानान्धकार नष्ट हुआ ॥ ॥

अपने पक्ष की श्रेष्ठता के मद से चूर चूर हुए प्रवादि (अन्य मती) भगवान चन्द्रप्रभ के वचन रूप सिंह नाद से मद रहित हो गए। जिस प्रकार कि मद के भरने से आद्र कपोल-वाले हाथी सिंह की गर्जना से मद रहित हो जाते हैं।

जिनका सम्पूर्ण प्राणियों को मोह से छुड़ा कर प्रबुद्ध (जागृत) कराने में निमित्तभूत अद्भुत तप था। जिनका अनन्त ज्ञान केवलज्ञान विषयक अविनश्वर चक्षु था, जिनका शासन मोक्ष देने वाला था ऐसे जो चन्द्रप्रभ भगवान लोक में परमात्म पद को प्राप्त हुए थे।

भव्यजन रूपी कुमुदों को प्रफुल्लित करने वाले तथा आत्मा के अनन्त ज्ञानादि स्वरूप के प्रच्छादक अनादि दोष रूप मल और कलंक रूप उपलेप अर्थात् आवरण से रहित वस्तु के स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली दिव्यध्वनि की प्रभा रूप किरणों के समुदाय से युक्त ऐसे व कमलदल से विशुद्ध भगवान् चन्द्रप्रभ मेरा मन कल्मष से विशुद्ध करें ॥७॥

य सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः १
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो,
वीरे श्री द्युति-कान्ति कीर्ति धृतयो हे वीर! भद्रं त्वयि
ये वीरमादौ प्रणमन्ति नित्य,

ध्यानस्थिता संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके,
ससारदुर्गं विषम तरंति ॥ ३ ॥
व्रतसमुदयमूल संयमस्कन्धबन्धो,
यमनियमपयोभिर्वधित शीलशाख ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो,
गुणकुसुमसुगन्धि सत्तपश्चित्रपत्र ॥ ४ ॥
शिवसुखफलदायी यो दयाछाययौघ
शुभजनपथिकाना खेदनोदे समर्थ ।
दुरितरविजताप प्रापयन्नन्तभाव
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्ष ५
चारित्र सर्वजिनैश्चरित प्रोक्त च सर्वशिष्येभ्य ।
प्रणमामि पचभेद पचमचारित्रलाभाय ॥ ६ ॥
धर्म सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुख धर्माय तस्मै नम ।
धर्मान्नास्त्यपर सुहृद्भवभृता धर्मस्य मूल दया,
धर्मे चित्तमह दधे प्रतिदिन हे धर्म ! मा पालय
धम्मो मगलमुदिट्ठ अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ८

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउ,
सम्मणाणाय......ण सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारे...

यम-नियम—संजमसीलमूलुत्तरगुणेसु सव्वमइचार सावज्जजोग पडिविरदामि असखेज्ज लोगअज्भवसाणठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिदियकसायगारव किरियासु मणवयणकायकरणदुप्पणिहाणि परिचिंतियाणि किण्हणीलकाउलेस्साओ विकहापलियु चिएण उम्मगहस्सरदि—अरदिसोयभयदुगंछवेयणविज्जंभजभाईआणि अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामिदाणि अणिहुदकरचरणमणवयणकायकरणेण अक्खित्तबहुलपरायणेण अपडिपुण्णेण वा सक्खरावयसंधायपडिवत्तिएण अच्छाकारिद मिच्छामेलिद आमेलिद अण्णहादिण्ण अण्णहा पडिच्छिद आवासएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तोहं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

इसका अर्थ दैवसिक श्रावक प्रतिक्रमण में आ चुका है नहीं है।

शांतिचतुर्विंशति—स्तुति.—

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां

पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं (इत्युच्चार्य 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायमुत्सृज्य 'थोस्सामि' इत्यादिदण्डकमधीत्य शान्तिकीर्तनां 'विधाय रक्षां' इत्यादिकां च चतुर्विंशतिकीर्तनां च 'चउवीसं तित्थयरे' इत्यादिकां साञ्चलिकां 'वृषभमनिन्दियराधा' इत्यादिकं च समूरिय संयता पठन्तु । तद्यथा—

सकलकर्मक्षयार्थं इत्यादि प्रतिज्ञा का उच्चारण कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि दण्डक पढ़कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे 'थोस्सामि' इत्यादि दण्डक पढ़कर विधाय रक्षां इत्यादि शान्ति कीर्तना और अंचलिका-युक्त चतुर्विंशति तीर्थंकर कीर्तना और "वृषभमनिन्दियराधा" इत्यादि पाठ सूरि और संयत पढ़ें।

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम्
चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् २
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ३
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम्
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलिदेवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसिकृतान्तचक्रम्
स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवाञ्छरण्यः

शान्ति-कीर्तना—

अनुपम पराक्रम वाले जो भगवान् शान्तिनाथ प्रथम षट्खड के अधिपति होकर चिरकाल तक शत्रुओं से प्रजा की सरक्षा करके पश्चात् वे दयामूर्ति शान्ति नाथ निखिलार्थ साक्षात्कारी मुनि होकर परोपदेश के विना स्वय ही अपने और प्रजाके पाप की शान्ति करते हुए ॥१॥

जो राजा शान्तिनाथ गृहस्थावस्थामे शत्रुओं को भय उपजाने वाले चक्रसे सब राजाओं के समूहको जीतकर, मुनि अवस्था में गर्भावतरादि कल्याणकों के धारक वे धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूप समाधि चक्रके द्वारा दुर्जय मोह सैन्यको जीतते हुए ॥२॥

जो राजसिंह शान्तिनाथ राज्यावस्थामे राजाओं के उत्तम भोगों से लीन हुए राज्यलक्ष्मी से सुशोभित होते हुए। फिर अर्हन्त अवस्थामे आत्मस्वरूपमें लीन होकर देव और असुरों का समवशरणवर्ती उदार सभामें आठ प्रातिहार्य और समवशरण रूप बाह्य लक्ष्मी से और अनन्त ज्ञानादि रूप आभ्यन्तर लक्ष्मी से सुशोभित हुए ॥३॥

जिन शान्तिनाथ के राजा होने पर सामन्त अन्य राजाओं का चक्र (समूह) हाथोंकी अजुली जोड़े हुए खड़ा रहा और सब सार्थ साक्षात्कारी मुनि होने पर दया रूप किरणों वाला धर्म चक्र आगे आगे चलता था, पुनः अर्हन्त पद की प्राप्ति होनेपर देवोंका चक्र हाथ जोड़े हुए बार बार शिर झुका कर खड़ा रहता था और चतुर्थ व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक शुक्लध्यान की प्राप्ति होने पर अवशिष्ट चार अघातिया कर्मचक्रका ध्वस होगया था ॥४॥

जिन्होंने अपनी आत्मा में स्थित रागादि भावों की शान्ति करके अपनी शान्ति की, तथा ससार-समुद्रसे पार होनेके लिए शरण को प्राप्त हुए भव्य जीवोंकी शान्ति के करने वाले, वे कर्म

न्द्र अगणित व अना भगवान शरण भूत शान्तिजिन मर भव
क्लेश और भय की न्पशान्ति के लिए हावें।

चउवीसे तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे।
सव्वेसि गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमंसामि ॥
ये लोकेऽष्टसहस्र लक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तगता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिका।
य साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्
नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम्।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीड्
विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं,
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम्
कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम्,
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ५

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो

कयो तस्सालोचेउ, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठम-
हापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं
बत्तीसदेवेंदमणिमउडमत्थयमहियाणं बलदेव वासुदेव-
चक्कहर रिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसहस्सणि-
लयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्च-
काल अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ
कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं
जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

इसका अर्थ पूर्व में भी कहा गया है, यहां पुनः नहीं लिखा।

चारित्रालोचनासहिता बृहदाचार्यभक्ति —

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं चारित्रालोचनाचार्यभक्ति-
कायोत्सर्गं करोम्यहम् —

(अत्रापि णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं विधाय 'थोस्सामि' इत्यादि दण्डकं पठेत्।)

सर्वातिचार की विशुद्धि के लिए चारित्र आलोचना युक्त आचार्य भक्ति में करता हूँ इस प्रकार यहां पर भी णमो अरहं

नाणं" इत्यादि दण्डक पढ़कर सत्ताइस उच्छ्वास प्रमाण कायो त्सर्ग का विधान कर 'थास्सामि इत्यादि दण्डक पढ़ फिर भक्ति पढ़ें।

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धूतरुषाग्निजालबहुलविशेषान्।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान् मुक्तियुत: सत्यवचनलक्षितभावान्
मुनिमाहात्म्यविशेषाज्जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान्
गुणमणिविरचितवपुषः षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन् सततं
रहितप्रमादचर्यान् दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टिकरान् ३
मोहच्छिदुग्रतपसः प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान्
प्रासुकनिलयाननघानाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ४
धारितविलसन्मुण्डान्वर्जितबहुदण्डपिण्डमण्डलनिकरान्।
सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान्
अचलान् व्यपेतनिद्रान् स्थानयुतान् कष्टदुष्टलेश्याहीनान्
विधिनानाश्रितवासानलिप्तदेहान् विनिर्जितेंद्रियकरिणः
अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्तचित्तानखण्डितस्वाध्यायान्।
दक्षिणभावसमग्रान् व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ७
भिन्नार्तरौद्रपक्षान् संभावितधर्मशुक्लनिर्मलहृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारव-
चर्यान् तरुमूलयोगयुक्तानवकाशातापयोगरागसनाथान्
बहुजनहितकरचर्यानभयाननघान् महानुभावविधानान् ९
ईदृशगुणसम्पन्नान् युष्मान् भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्
विधि ।ना।१८।   मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा

अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबंधनमुक्तान्
शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततं

जो निर्दोष गुणस्तवन करने में रात दिन सावधान रहते हैं जिन्होंने श्रावकादि रूप अग्नि से समूह को अज्ञानादि भेदों का भस्म कर दिया है जो तीन गुप्तिसे परिपूर्ण हैं, जो मुक्तिमें सम्बन्ध रखने वाले हैं जिनके आत्म—परिणाम सत्य वचन से अनुरंजित हैं ॥१॥

जो मुनियों के ज्ञानातिशय रूप माहात्म्य को नियमित करने वाले हैं जिनशासन का उद्योत करने के लिए दीपक के समान जिनकी शरीर मूर्ति दैदीप्यमान है जिनका मन ... दृष्टि के प्राप्त करने में लगा रहता है। जो ज्ञानावरणादि ... कर्मोंके ... प्रबलदावाग्नि प्रचुर कारणों का ... करने में कुशल हैं ॥२॥

जिनका शरीर सम्यक्त्व आदि गुण रूप मणियों से रचा हुआ है, जो पापादि ... के ज्ञान के निरन्तर आधार हैं जिनकी चर्या विकथा ... प्रमादों से रहित है, जिनका सम्यग्ज्ञान रूपी ... आदि ... से रञ्जित निर्मल है, जो ... विध संघ को सन्तुष्ट करने वाले हैं ॥३॥

जिनका ... तप अवधि आदि ज्ञानों का कारण होनेसे अज्ञान का नाशक है जिनका व्यवहार लाभादिक से रहित क्षमा ... हृदयसे स्वयं ... है जो पापों से रहित हैं, जिनका चित्त इस लोक और परलोक सम्बन्धी आशा का विध्वंसक है और जिनने मिथ्यादर्शन आदि ... कर्मों का ... कर दिया है ॥४॥

जिनने प्रशस्त मन वचन, काय ... पांच इन्द्रियां, हाथ और पैर इन दश प्रशस्त मुद्राओं का धारण किया अर्थात् जिनके ये दश ... प्रशस्त हैं, जिन मुनि—समुदाय में अधिक प्रायश्चित्त लेने वाले मुनि हैं और अधिक प्रायश्चित्त युक्त आहार ग्रहण

करानेवाले मुनि हैं उनमें जो वर्णित हैं, विशिष्ट आचरणों द्वारा जो सब परिषहों का पालन वाले हैं और जो निरन्तर मिथ्यादि पंद्रह प्रमादों से सर्वथा रहित हैं ॥५॥

जो किसी भी कारण से परीषह उपनिपात होने पर मनानुष्ठान से विचलित नहीं होते हैं निद्रा में चपल हैं उभयकाय स्नेह से युक्त हैं दुःख भागी भाव से कष्ट रूप और कुगति में गमन का कारण होनेमें दुष्ट रूप कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याओं से हीन हैं आगमोक्त विधानके अनुसार पर्वतों का यमनिग्रह आदि अनेक नियमों को जो आश्रय ग्रहण किये हुए हैं तपके माहात्म्य से जिनका देह निर्मल है अथवा जिनका देह सर्वांग संयम युक्त है और इन्द्रिय रूप हाथियों को जिनने वशमें कर लिया है ॥६॥

जिनके सदा पाठ नहीं है उत्कृष्ट आसन में ध्यान करते हैं जिनका चित्त द्वयापाद्य के विषय में सरस है स्वाध्याय जिनका अवहित है अर्थात् जो बराबर स्वाध्याय करते हैं, जो प्रशस्त भावों से परिपूर्ण हैं और मद राग लोभ शठता, मात्सर्य से रहित हैं ॥७॥

जिन्होंने आर्त्त और रौद्रध्यान के पक्षों का विनाश कर दिया है धर्मध्यान और शुक्लध्यान का निर्मल हृदयमें अनुभव किया है, तरर्थाग्र कर्मनिधि का मस्तक लिए नाश कर दिया है, जो अत्यन्त पुण्य रूप हैं जिनके श्रीह—विशेष ऋद्धि की प्राप्ति अत्यन्त श्लाघनीय है और रसास्वादनादि ऋद्धियों की प्रवृत्ति सर्वथा नष्ट हैं ॥८॥

जो वर्षा कालमें वृक्षमूलयोग में युक्त हैं, शीतकालमें अभ्रावकाश योग में और ग्रीष्मऋतु में आतापन योग में अनुराग सहित हैं, जिनका दया नहीं ना का हित करने वाला है, जो सात भयों से वर्जित हैं जो त्रिपाप हैं पञ्च माहात्म्य ध ——

जो आचार्य इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न हैं, जिनके मन, वचन और काय योग परीषह आदिसे अनुभित हैं, सम्पूर्ण गुणों से युक्त होनेके कारण जो अनवरत प्रधान रहते हैं, अशुभ कर्मादि जन्य से उत्पन्न जन्म, जरा और मरण इन सब दोषों के बंधन से मुक्त हैं ऐसे आप आचार्यों को मैं बड़ी भारी भक्ति से विधि पूर्वक मुकुलीकृत हस्तों से शोभित शिरसे सदा नमस्कार करता हूँ। इससे मेरे प्रशस्त हीनाधिक भाव से रहित निर्दोष, अक्षय निर्बाध मुक्ति सम्बन्धी सुख मंगल प्राप्त होय ॥१० ११॥

लघुचारित्रलोचना—

इच्छामि भंते! चरित्त यारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंता, हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

■ भगवन्! पंच महाव्रत पांच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का चारित्र-आचार है उसका मैंने खंडन किया, तत्सम्बन्धी दोषों को प्रकट करना चाहता हूँ। गुरु कहते हैं—हे शिष्य! प्रकट कर। इस प्रकार गुरु की आज्ञा होने पर शिष्य तेरह प्रकार चारित्र में संजात दोष प्रकट करता है—उक्त तेरह प्रकारके चारित्रमें जो पहला महाव्रत है वह प्राणों के व्यतिपातसे

विरमण रूप है। उसमें हैं—पृथिवी कायिक असंख्याता संख्यात अप्कायिक असंख्यातासंख्यात जीव, तेजस्कायिक असंख्यातासंख्यात जीव वायुकायिक असंख्यातासंख्यात जीव और वनस्पति कायिक अनन्तानन्त जीव हरित, बीज अंकुर इत्यादि, इन पृथ्वी कायिक आदि वनस्पति पर्यन्त के पांच प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर जीवों का उत्ताप परिताप विराधन और उपघात मैंने किया हो दूसरे से कराया हो और अपने आप करते हुए दूसरे को अच्छा माना हो, इस उत्तापनादि से उपार्जित हुआ दुष्कृत मेरा मिथ्या हो॥

बेइन्दिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि किमी-सख-खुल्लय वराडय अक्ख-रिट्ठ-वाल संबुक्क सिप्पि-पुलवि याइया तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां जिनके हैं वे द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं। ये संख्या से असंख्यातासंख्यात हैं। वे हैं—कुक्षि कृमि शंख क्षुल्लक वराटक अक्ष रिष्ट बाल सम्बूक सीप पुलवि इत्यादि प्रकार के। उनका उत्तापन परितापन विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया है अन्य से कराया है स्वयं करते हुए अन्य को अनुमोदना की है। उस उक्त द्वीन्द्रियादि जीवों के उत्तापना आदि से लगा मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे निष्फल होवे।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु देहिय विंछिय गोभिंद-गोजव-मक्कुण पिपीलियाइया, ...

उद्दावणं परिदा... उवघादो कदो

वा कारिदो ... ...दो तस्स मिच्छा

स्पशन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रिया जिनके है उन्हे तीन इन्द्रिय जीव कहते हैं जो कि असख्यातासख्यात प्रमाण हैं, वे हैं कुथु देहिक बिच्छू, गोभिम, गोजू, मत्कुण, पिपीलिका इत्यादि प्रकार। उनका उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने स्वय किया है, अन्यसे कराया है और स्वय करते हुए अन्य की अनुमोदना की है। उस उत्तापनादि सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या होय।

चउरिंदिया जीवा असखेज्जासखेज्जा, दसमसय-मक्खिपयग-कीड भमर-महुयर गोमच्छिआइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

स्पर्शन रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिया जिनके होती हैं उन्हे चार इन्द्रिय जीव कहते हैं, जो कि असख्यातासख्यात प्रमाण हैं। वे हैं—डास, मच्छर मक्खी, पतग कीट, भौंरा मधुकर, गोमक्खिका इत्यादि प्रकार। उनका उत्तापन परितापन विराधन और उपघात मैंने स्वय किया है, औरों से कराया है और स्वय करते हुए औरों की अनुमोदना की है। उस उत्तापनादिक से उपार्जित दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।

पचिंदिया जीवा असखेज्जासखेज्जा, अडाइया-पादाइया–जराइया–रसाइया–ससेदिमा–सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा–उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ जिनके होता है वे पंचेन्द्रिय जीव होते हैं। जो कि संख्या में असंख्यात संख्यात प्रमाण हैं। वे हैं—अण्डायिक, पोतायिक, जरायुज, रसायक, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उपपादिम इत्यादि प्रकार। इनका उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया है दूसरे से कराया है और स्वयं करते हुए दूसरे का अनुमोदना की है उस उस उत्तापनादि से उपार्जित हुआ मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

इच्छामि भंते ! कायोसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचा अवासयमचेलमण्हाणं
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तोहं॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं॥

हे भगवन् ! मैंने कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र से युक्त
आचारादि ...

के पालन में रत सर्व साधुओंकी पुष्पादि द्रव्यासे अर्चा करता हूँ, चतुर्मुख समवशरणमें चतुर्मुख महामह आदि पूजा करता हूँ, उनके गुणों की प्रशंसात्मक वन्दना करता हूँ और दो हस्त, दो पैर और शिर एवं पचाग से भूमिपतनात्मक नमस्कार करता हूं।

बृहदालोचना सहित आचार्य मध्यम भक्ति—

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं "थोस्सामि" इत्यादिस्तवमधीत्य "देसकुलजाइसुद्धा" इत्यादिना मध्याचार्यस्तुतिं "इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं" इत्यादिबृहदालोचना च सक्षेप सोधव पठेयु)

सब अतिचार की विशुद्धि के लिए बृहत् आलोचना और आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूँ—

(इस प्रकार उच्चारण कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडक पढकर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग कर "थोस्सामि" इत्यादि दंडक पढ कर "देसकुलजाइसुद्धा" इत्यादि मध्यमाचार्य स्तुति और हे भगवन्! पाक्षिक में आलोचना चाहता हूँ पन्द्रह दिन इत्यादि बृहत् आलोचना आचार्य सहित साधुजन पढें।)

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥१॥
सगपरसमयविदण्हू आगमहेदूहि चावि जाणित्ता।

सुमरंथा जिणवयणे विणये संताणुरूवेण ॥२॥
बालगुरुवुड्ढसेहे गिलाणथेरे य खमणसजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥३॥
वयसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपह ठाविया पुणो अण्णे ।
अज्झावयगुणणिलये साहुगुणेणावि सजुत्ता ॥४॥
उत्तमखमाए पुढवी पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा ।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो ॥५॥
गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरव्व मुणिवसहा ।
एरिसगुणणिलयाणं पाय पणमामि सुद्धमणो ६
संसारकाणणे पुण बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्ह पसाएण ॥७॥
अविसुद्धलेस्सरहिया विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य सजुत्ता ॥८॥
उग्गहईहावायाधारणगुणसपदेहि सजुत्ता ।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहिं वदामि ॥ ९ ॥
तुम्ह गुणगणसथुदि अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाह गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्च १०

जो आय वंश, पितृवंश कुल और मातृवश जाति इन तीनों से शुद्ध हैं तथा विशुद्ध मन, विशुद्ध वचन और विशुद्ध काय से संयुक्त हैं ऐसे आचार्य का चरण कमल मेरे लिए नित्य मंगल रूप हो ॥१॥

जो आगम और हेतुओंसे जीवादि पदार्थों को जानकर स्वमत और परमत का विचार करने वाले हैं, जिन वचन में

प्रतिपादित अर्थ के समर्थन में और सत्यानुरूपसे विनय करा से अच्छी तरह समर्थ हैं ॥८॥

जो साधु पाल हैं, बडे हैं, छूटे हैं, शिक्षय हैं, ग्लान हैं, स्थविर हैं, तपस्वी हैं, तथा दु शाल हैं, उन सब का उस रूप जानने म जा सन्मार्ग म प्रवताने वाले हैं ॥३॥

जा व्रत, समिति और गुप्ति स युक्त हैं और अय जना को मुक्ति के मार्ग म स्थापक हैं, उपाध्याय के पच्चीस गुणों के निलय हैं तथा साधुओं के अट्ठाइस गुणों से भी सयुक्त हैं ॥४॥

आचार्य क्षमा से युक्त हैं इस लिए पृथ्वीके समान हैं, निर्मल भाव वाले हैं इसलिए स्वच्छ जलके सदृश हैं, कर्म रूप इन्धन का दहन करने वाले हैं इसलिए अग्नि के समान हैं निष्परिग्रही हैं इसलिए वायु जैसे हैं ॥५॥

आकाश क समान निरुपलेप हैं (इसलिए आकाश सरीखे हैं) वे मुनियों म श्रेष्ठ आचार्य सागर क समान क्षोभ रहित हैं। इस प्रकार के गुणों के निलय (स्थान) आचार्यों के चरणों को शुद्ध मन होकर प्रणाम करता हूँ ॥६॥

भव वन में बार बार भ्रमण करने वाले भव्य जीवों ने आपके प्रसाद से निर्वाण का मार्ग पाया है ॥७॥

जो कृष्णादि अशुभ लेश्याओं से रहित हैं जो पीतादि शुभ लेश्याओं से परिणत हैं अत एव शुद्ध हैं। ससार के कारण रौद्र और आर्त ध्यानों से त्यक्त हैं तथा मोक्ष के हेतु धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लीन हैं ॥८॥

जो श्रुतार्थ भावना के आविर्भावक अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा गुण रूप सपदा से सयुक्त हैं उन आचार्यों की वन्दना करता हूँ ॥९॥

हे भगवन आचार्य ! आपके गुणों की स्तुति मुझ अज्ञान (अज्ञ) ने जो की है वह गुरु भक्ति से युक्त स्तुति मुझे प्रति दिन बोधिलाभ देवे ॥१०॥

बृहदालोचना—

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउ, पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरसण्हं राईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

हे भगवन् ! पक्षभर में या दिन गणना से पन्द्रह दिन और पन्द्रह रात्रि के भीतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार के आचार में मेरे जो अतिचार समय हुआ है उसकी आलोचना करना चाहता हूं।

इच्छामि भंते ! चउमासिम्मि आलोचेउ, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाण्हं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

हे भगवन् आचार्य ! इन चार महीनां में या आठ पक्ष, एक-सौ बीस दिन और एक सौ बीस रात्रि के भीतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इसप्रकार पांच प्रकार के आचार में जो अतिचार (दोष) समय हुआ है उसकी आलोचना करता हूँ।

इच्छामि भंते ! संवच्छरियं आलोचेउ, बारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्णिछावट्ठिसयदिवसाणं तिण्णछावट्ठिसयराईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दसणायारो तवायारो

हे भगवन् आचार्य ! सांवत्सरिक या मास, पक्ष, दिन रात्रि गणना की अपेक्षा बारह मास, चौबीस पक्ष, तीन सौ छ्यासठ दिन और तीन सौ छ्यासठ रात्रि में आभ्यन्तर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार के आचारमें जो मेरे अतिचार सम्भव हुआ है, उसकी आलोचना करता हूँ।

तत्थ णाणायारो काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे, वंजण अत्थ तदुभये चेदि। तत्थ णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो से अक्खरहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा पदहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो काले वा परिहाविदो अत्थाकारिदं वा मिच्छामेलिदं वा आमेलिदं वा मेलिदं वा अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छिदं आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

उन पांच प्रकार के आचारों में पहला जो ज्ञानाचार है वह आठ प्रकार का है काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, व्यंजन शुद्ध, अर्थ शुद्ध और उभय शुद्ध। उसका परिहापन किया, खंडन किया। स्तवना, स्तुतियों, अर्थाख्यानों, अनुयोग, और अनुयोग द्वारों में स्वरहीन, अक्षर-हीन, पदहीन, अर्थ हीन, ग्रन्थ-हीन पठन पाठन आदि करके उक्त आठ प्रकारके ज्ञानाचार का परिहापन किया, अस्वाध्याय काल में आगम का स्वाध्याय किया, कराया, स्वयं करते हुए को अच्छा माना, स्वाध्याय कालमें स्वाध्याय नहीं किया, बिना विचारे अर्थका जल्दी जल्दी

उच्चारण किया, किसी को किसी अविद्यमान के साथ पदच्छेद-रहित मिलाया, शास्त्र के किसी अर्थ अवयव को किसी अन्य अवयवमें जोड़ कर पढ़ा, उच्चोचार—युक्त पाठ को नीच स्वर वाले पाठ के साथ और नीचध्वनि-युक्त पाठ को उच्चध्वनि युक्त पाठ के साथ जोड़कर पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया अर्थात् अन्यथा सुना हुई आवश्यकों की परिहीनता करके अथवा उनका उनके कालानुसार अनुष्ठान न करके परिहापन किया, अष्टविध ज्ञानाचारका परिहापन ? परित्याग किया। उस ज्ञानाचार-परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो-णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठीय, उवगूहण ठिदिकरण वच्छल्ल पहावणा चेदि।

अट्ठविहो परिहाविदो संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णदिट्ठिपसंसणदाए परपाखंडपसंसणदाए अणायद-णसेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

दर्शनाचार निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सत्व, अमूढ दृष्टित्व उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना इस प्रकार आठ प्रकारका है। उसका शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा, परपाखंड प्रशंसा अनायतन सेवा, अवात्सल्य और अप्रभावना न करके जो मैंने उसका परिहापन किया है। उस दर्शनाचार-परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥२॥

तवयारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि, तत्थ बाहिरो अणसणं

हे भगवन् आचार्य ! सांवत्सरिक या मास, पक्ष, दिन रात्रि गणना की अपेक्षा बारह मास चौबीस पक्ष, तीन सौ छप्पन दिन और तीन-सौ छप्पन रात्रि के अभ्यंतर ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तप आचार, वीर्याचार और चारित्राचार इस प्रकार पांच प्रकार के आचारमें जो मेरे अतिचार संभव हुआ है, उसकी आलोचना करता हूँ।

तत्थ णाणायारो काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे, वजण अत्थ तदुभये चेदि। तत्थ णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो से अक्खरहीणं वा सरहीणं वा वजणहीणं वा पदहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा अट्ठकवाएसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो काले वा परिहाविदो अत्थाकारिद वा मिच्छामेलिदं वा आमेलिदं वा मेलिदं वा अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छिदं आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

उन पांच प्रकार के आचारों में पहला जो ज्ञानाचार है वह आठ प्रकार का है काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, व्यंजन शुद्ध, अर्थ शुद्ध और उभय शुद्ध। उसका परिहापन किया, खंडन किया। स्तवनों, स्तुतियों, अर्थाख्यानों, अनुयोग, और अनुयोग द्वारों में स्वरहीन, व्यंजन-हीन, पदहीन, अर्थ हीन ग्रन्थ-हीन पठन पाठन आदि करके उक्त आठ प्रकारके ज्ञानाचार का परिहापन किया, अस्वाध्याय काल में, आगम का स्वाध्याय किया, कराया, स्वयं करते हुए को अच्छा माना, स्वाध्याय कालमें स्वाध्याय नहीं किया, बिना विचारे अर्थको जल्दी जल्दी

उच्चारण किया किसी को किसी अविद्यमान के साथ पदच्छेद रहित मिलाया, शास्त्र के किसी अन्य अवयव को किसी अन्य अवयवमें जोड़ कर पढ़ा, उच्चोचार—युक्त पाठ को नीच स्वर वाले पाठ के साथ और नीचध्वनि-युक्त पाठ को उच्चध्वनि युक्त पाठ के साथ जोड़कर पढ़ा अन्यथा पढ़ा, अन्यथा ग्रहण किया अर्थात् अन्यथा सुना हुए आवश्यकों की परिहीनता करके अर्थात् उनका उनके कालानुसार अनुष्ठान न करके परिहापन किया, अष्टविध ज्ञानाचारका परिहापन ? परित्याग किया। उस ज्ञानाचार-परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥१॥

दसणायारो अट्ठविहो-णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिछा अमूढदिट्ठीय, उवगूहण ठिदिकरण वच्छल्ल पहावणा चेदि।

अट्ठविहा परिहाविदो संकाए कंखाए विदिगिछाए अण्णदिट्ठिपसंसणदाए परपाखंडपसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छल्लदाए अपहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

दर्शनाचार निःशंकित, निष्कांक्षित निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपगूहन, स्थितीकरण, वात्सल्य और प्रभावना इस प्रकार आठ प्रकारका है। क्रमशः शंका कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा, परपाखंड प्रशंसा अनायतन सेवा, अवात्सल्य और अप्रभावना न करके जो मैंने उसका परिहापन किया है। उस दर्शनाचार-परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥३॥

तवयारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि, तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं

[illegible]

वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासण चेदि, तत्थ अब्भतरो पायच्छित्त विणओ वेज्जावच्च सज्झाओ भाण विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतर बाहिर बारसविह तवोकम्म ण कद णिसण्णेण पडिक्कंत तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

तप आचार बारह प्रकार का है। छह प्रकार का आभ्यंतर तप आचार और छह प्रकारका बाह्य तप आचार। उसमें से बाह्य तप आचार अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, शरीर परित्याग, और विविक्त शय्यासन इस प्रकार छह प्रकार का है। और आभ्यंतर तप आचार प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय ध्यान और व्युत्सर्ग इस प्रकार छह प्रकार का है। यह दोनों प्रकार का बाह्याभ्यन्तर तप नहीं किया। परीषह आदि से पीडित होकर छोड़ दिया उस बारह प्रकार के तप आचार के परिहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥३॥

वीरियायारो पचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण णिगूहिय तवोकम्म ण कय णिसण्णेण पडिक्कंत तस्स मिच्छा मे दुक्कड ॥४॥

पाच प्रकार के वीर्याचार का परिहापन किया। वरवीर्य पराक्रम से यथोक्तमान से, शारीरिक बलसे आत्मशक्ति से एवं परिक्रम से तपश्चरण किया जाता है। उक्त पाच प्रकार के वीर्याचार का प्रकट करने वाले मुनि के द्वारा जब तप किया जाता है तब पाच प्रकार का वीर्याचार अनुष्ठित (पालित) होता और जब परिषह आदिसे पीडित होकर उस प्रकार से तप न किया जाता है किन्तु परीषह आदि से पीड़ित

होकर तप करना छोड दिया जाता है, तब तप करने का सामर्थ्य के होते हुए भी वह वीर्य निगूहित होता है, अप्रकट होजाता है। इस प्रकार पाच प्रकार का वीर्याचार परिहापित होता है। इसलिए वीर्यहापन सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥४॥

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरहविहो परिहाविदो पंच महव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पाच महाव्रत पांच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार मिल कर तेरह प्रकार का चारित्राचार होता है वह मुझसे खंडित हुआ है। तेरह प्रकार के चारित्राचार में पहला प्राणातिपात से विरमण नामक महाव्रत है। पाच इन्द्रिय प्राण, तीन बल प्राण, एक श्वासोच्छ्वास और एक आयुप्राण ; इस प्रकार दश प्राण हैं। इन यथासंभव दश प्राणों के धारक एकेन्द्रियादि जीवों के भेद में पाच प्रकार के जीव हैं। उनमें से प्रथम एकेन्द्रिय जीवोंका प्ररूपण करते हुए कहते हैं—

असंख्यातासंख्यात पृथ्वीकायिक जीव, असंख्यातासंख्यात जल कायिक जीव, असंख्यातासंख्यात अग्निकायिक जीव, अस-

बीज और अंकुर रूप अनन्तानन्त वनस्पतिकायिक पांच स्थावर जीव हैं उनका उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया, अन्यसे कराया और स्वयं करता हुआ अन्य अनुमोदा गया, उन पृथिवी कायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के उत्तापनादिसम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि किमि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख रिट्ठ गंडवाल संबुक्क सिप्पि-पुलविकाइया, तेहिं उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

आगे दो इन्द्रिय जीवों का निरूपण करते हुए कहते हैं- दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। वे हैं-कुक्षि, कृमि, शंख, क्षुल्लक, वराटक, अक्ष, रिष्ट, गंडवाल, शम्बूक, सीप पुलवि, जौंक इत्यादि और भी। उन कुक्षि, कृमि, प्रभृति दो इन्द्रिय जीवों का उत्तापन, परितापन, विराधन और उपघात मैंने स्वयं किया है, अन्यसे कराया है और स्वयं करते हुए अन्य की अनुमोदना की है। उन दोइन्द्रिय जीवों के उत्तापनादि-सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद -गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अब तीन इन्द्रिय जीवों का प्रकार प्रतिपादन कर उनके उप[illegible] से व्यावृत्ति का प्रतिपादन करते हुए, कहते हैं—तीन

[illegible]

इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं। ये हैं—कुंथु, देहिक, बिच्छु, गोमिन्द, गाची, माकड़, (खटमल) पिपालिका इत्यादि और भी। इन कुंथु आदि तेइन्द्रिय जीवोंका उत्तापन परितापन विराधन उपघात मैंने स्वयं किया है, अन्य से कराया है, और स्वयं करते हुए अन्य की अनुमोदना की है, तेइन्द्रिय जीवोंके उस उत्तापन आदि से उपार्जित मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

चउरिंदिया बीआ असंखेज्जासंखेज्जा दसमसय-मयग कीड-भमर-महुयर गोमच्छिया तसि उद्दावण परिदावण विराहण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

अब चतुरिन्द्रिय जीवों का प्रकार दिखाकर उनके उत्तापन आदि से उपार्जित दुष्कृत मिथ्या करते हैं। चौइन्द्रिय जीव, असंख्यातासंख्यात हैं। वे हैं—

डांस, मच्छर, मक्खी, पतंग, कीट भ्रमर मधुमक्खी, गोमक्खी इत्यादि और भी अनेक हैं। उनका उत्तापन, परितापन, विराधन उपघात मैंने स्वयं किया है, अन्यसे कराया है, स्वयं करते हुए अन्य की अनुमोदना की है। चौइन्द्रिय जीवों के उस उत्तापन आदि से उत्पन्न हुआ मेरा दुष्कृत मिथ्या होय।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया-पोदाइया-जराइया-रसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा उववादिमा, अवि चउरासीदिजोणीपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे ५

अथ पचेन्द्रिय जीवों का प्रकार प्ररूपण कर उनके उपघातादि से विरति प्ररूपण करते हुए कहते हैं। पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासख्यात हैं। वे हैं—अंडायिक, पोतायिक, जरायिक रसायिक, संस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम उपपादिम इत्यादि और भी अनेक चौरासी लाख योनि प्रमुख पचेन्द्रिय जीव। उन अंडायिकादि पचेन्द्रिय जीवों का उत्तापन, परितापन, विराधन उपघात मैंने स्वय किया, अन्यसे कराया और स्वयं करते अन्यको अनुमोदना की। पचेन्द्रिय जीवों के उम उत्तापना आदि से उपार्जित हुआ मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो अवासयमचलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइच्चारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

व्रत, समिति, इन्द्रियनिरोध, बालोत्पाटन, आवश्यक, अचेलक, स्नान त्याग, क्षितिशयन, अदन्तधावन, खड़े आहार और दिनम एक बार भोजन, ये श्रमणों के मूल गुण हैं, जो जिनेन्द्रके द्वारा सब से प्रथम प्रणीत हैं। इन मूलगुणों में प्रमाद-वश किये गये अपराध से मैं निवृत्त होता हूँ। दोषों का निराकरण हो शुद्ध व्रतों की मेरे उपस्थापना होवे।

क्षुल्लकालोचनासहिता क्षुल्लकाचार्यभक्ति—
सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्ति-
कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

सब अतिचारों की विशुद्धि के लिए क्षुल्लक आलोचना और सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूँ—

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दण्डकादिकं विधाय "प्राज्ञ प्राप्तसमस्त-शास्त्रहृदय" इत्यादिकां "श्रुतजलध्याद्यि मोक्षमार्गोपदेशका" इत्येवमन्तिकां समुच्चय भक्तिः पठेयु)

(इस प्रकार उच्चारण कर पूर्ववत् दण्डादिक पढ़कर "प्राज्ञ प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय" इसे आदि लेकर श्रुत जलधि इत्यादि मोक्षमार्गोपदेशक पर्यन्त आचार्य भक्ति आचार्य-सहित सब मयत पढ़ें) वह इस प्रकार—

प्राज्ञ प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय प्रव्यक्तलोकस्थिति,
प्रास्ताश प्रतिभापर प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तर ।
प्राय प्रश्नसह प्रभु परमनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्मकथा गणी गुणनिधि प्रस्पष्टमिष्टाक्षर ॥
श्रुतमविकल शुद्धा वृत्ति परप्रतिबोधने,
परिणातिरुद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुतास्पृहा,
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरु सताम् ॥
श्रुतजलधिपारगेभ्य स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्य ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्य ३
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसदंसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥ ४ ॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥५॥
ये नित्य व्रतमन्त्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुला,

षट्कर्माभिरतास्तपोधनधना साधुक्रियासाधव !
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्च द्राकतेजोधिना,
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटा प्रीणन्तु मां साधव ६
गुरव पान्तु नो नित्य ज्ञानदर्शननायका ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशका ॥ ७ ॥

जो प्राज्ञ बुद्धिमान हैं, जिसने सम्पूर्ण शास्त्र का रहस्य प्राप्त किया है, जिसके समक्ष लोकों की स्थिति स्पष्ट है, जिसकी लौकिक आशा नष्ट हो गई है जो प्रतिभाशाली हैं, उपाय आयस रहित उपशम भाव वाला है, प्रश्नकर्ता के प्रश्न से पहले ही जो स्मरण उत्तर भाव रखता है जो प्रश्नों का सहन करने वाला है समर्थ है पर मन का हरण करने वाला है, पराई निन्दा से रहित है, गुण निधि है जिसके वचन स्पष्ट और मधुर हैं, ऐसा गणी आचार्य धर्मकथा करने वाला होता है। अथवा ऐसा गणी धर्म कथा कहे ॥१॥

जिसका श्रुत (शास्त्र ज्ञान) निःसन्देह परिपूर्ण है, जिसकी मन, वचन और काय की प्रवृत्ति शुद्ध निर्मल है औरों को बोध कराने में जिसकी परिणति है, जो मोक्ष मार्ग के प्रवर्तन का प्रशस्त निमित्त जिसके भारी उद्योग है जो अपने से बड़ों का विनय करने वाला है अहंकार रहित है जिसमें लावण्यता है मृदुता (कोमलता) है, जो स्पृहा रहित है जिसमें और भी अन्य अनेक यतिपति के गुण हैं वह सज्जन पुरुषों का गुरु होता है ॥ ॥

जो श्रुतसमुद्र के पारगामी हैं, स्वमत और परमत के विचार करने में चतुर हैं, सच्चारित्र और तपके निधि हैं गुणों में बड़े हैं, ऐसे गुरुओं को नमस्कार हो ॥३॥

जो छत्तीस गुणों से परिपूर्ण हैं, पाँच प्रकार के आचार के

दर्शन में सन्दर्शी हैं, शिष्यों का अनुग्रह करने में कुशल हैं, ऐसे धर्माचार्यों को सदा वन्दना करता हूँ ॥७॥

जो गुरुभक्ति और संयम से घोर संसार-सागर से तिरते हैं वे आठ कर्मों का छेदन करते हैं और जन्म मरण को कभी प्राप्त नहीं होते ।

जो नित्य व्रत मंत्र के होम में निरत हैं, ध्यान रूप अग्निमें हवन करने में आकुल हैं, आवश्यकादि षट्-क्रियाओं में रत हैं, तप रूप धनके धनी हैं, साधुओं की क्रिया के साधन करने वाले हैं शील ही जिनके आवरण वस्त्र हैं, गुण ही जिनके प्रहरण (शस्त्र) हैं, चन्द्र और सूर्य के तेजसे भी जिनका तेज अधिक हैं, मोक्ष के द्वार के कपाटों के उद्घाटन करने में भट हैं, ऐसे साधु आचार्य मेरा मरक्षण करें ॥८॥

चारित्र रूप समुद्रके समान गंभीर, मोक्षमार्ग के उपदेशक ज्ञान और दर्शन के नायक ऐसे गुरु आचार्य हमारी नित्य रक्षा करें ॥९॥

आलोचना

इच्छामि भंते ! आइरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादिसुदणाणो-वदेसियाणं उवज्झायाणं, ति रयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

वदसमिदियरोधो लोचो अवासयमचेलमण्हाण ।

खिदिसयणमदंतवण ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एद खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थपमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैंने किया उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र में युक्त पांच प्रकार के आचार के पालने वाले आचार्यों का, आचारादि श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायों की और तीन रत्न रूप गुण के पालन में अनुरक्त सर्व साधुओं की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ और नमस्कार करता हूँ, दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि-पूर्वक मरण और जिनेन्द्र के केवल्यादि गुणों की सम्प्राप्ति मुझे हो।

उक्त गाथाओं का अर्थ ऊपर कई बार आचुका है।

समाधिभक्ति —

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्ध-चारित्र प्रतिक्रमण-निष्ठित-करणवीर शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकर--चारित्रा-लोचनाचार्य--बृहदालोचनाचार्य-- क्षुल्लकालोचनाचार्य-भक्तिं कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधि-भक्ती कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(स्तुत्वाय पूर्ववद् दण्डकादिकं कृत्वा 'शास्त्राभ्यासो जिनपति इत्यादींप्रार्थनां सम्पूर्य सादरं पठेयु) ।

सब अतिचारों की विशुद्धि के लिए सिद्धभक्ति, चारित्र-भक्ति प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठित-करण वीर भक्ति, शान्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति चारित्रालोचना सहित बृहदाचार्य-भक्ति बृहद् आलोचना सहित मध्याचार्य भक्ति और क्षुल्लकालोचना सहित क्षुल्लकाचार्य भक्ति करके उनमें हीनाधिकत्वादि दोषों की विशुद्धि के लिए, समाधि भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूँ।

(ऐसा उच्चारण कर पहले की तरह दंडक आदि करके "शास्त्राभ्यासो जिनपति" इत्यादि इष्ट प्रार्थना सूरि सहित साधु करें)

अथेष्टप्रार्थना—प्रथम करण चरण द्रव्य नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति सगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ १ ॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदये तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः २
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ३

इसका अर्थ पहले आचुका है

आलोचना

५ इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ
तस्सालोचेउं, रयणत्तयपरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं